समर्पण

किसे समर्पण करूं ? तुम्हें ! अपनी गृहलक्ष्मीको; अपनी पति-प्राणा अर्द्धाङ्गिनीको; पुण्यमयी, मङ्गलमयी, आनन्द-स्वरूपिणी सह-धर्मिणीको ?—जिसने दुःख-सुखमें, नर्मी-गर्मीमें, तंगी-खुशहालीमें आज तक मेरा हाथ बटाया; जिस प्रेममयी प्राणेश्वरीने अपने स्त्रीधर्म का पालन कर मेरे गृहस्थाश्रमको स्वर्गके नन्दन-बनसे भी अधिकतर रमणीय और मनोरम बनाया, उस हृदयेश्वरीको समर्पण करूं ?—

आर्ये ! यह **"जनक-नन्दिनी"** तो उसी दिनसे तुम्हें समर्पित कर चुका हूं, जिस दिन मैंने इस नाटकको समाप्त कर, जगत्माता सती शिरोमणि **श्रीसीताजी** के चरित्रको सुना सुनाकर तुम्हें अश्रु-जलधारामें डुबा दिया था। मैं तो उसी, उसी दिनसे इस **"जनक-नन्दिनी"** का अक्षराक्षर तुम्हारी अगाध पति-भक्ति, निःस्वार्थ पति-सेवा और अनन्त पति-सम्मानकी पवित्र मूर्तिके आगे भेंट स्वरूप अर्पण कर चुका हूं। अब तो केवल उसी स्वच्छ प्रेम भावसे विह्वल होते हुए अपने मर्मःस्थलकी गुप्त आकांक्षाको इस कोरे पत्रपर लिख-कर हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें तुम्हारी अविरल स्नेह-भक्तिकी घोषणाकर अपना कर्त्तव्य निभा रहा हूं।

भद्रे ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम मेरी इस आशामयी शब्दां-जलिको स्वीकार कर अपने पतिके हार्दिकोत्साहको बढ़ाना अपना परम धर्म समझोगी।

— —

१११/
५०७५८

"जनक-नन्दिनी-नाटक"

का

जीवन वृतान्त ।
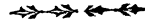
पहले पहल १६१२ में इस नाटकके लिखनेका शुभ विचार मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ **और** वास्तवमें इस शुभ विचारका जन्मदाता **श्रीकविवरभव-भूतिजीका"उत्तर रामचरित्र"**ही है। तिसपर जब इस शुभ विचारने होश सम्भाला तो मेरे परम मित्र, **श्रीयुक्त पं० उमाशंकर भट्टाचार्य, एम० ए०** ने इसकी मुश्कें कसकर मेरे हृदय-मन्दिरमें रख दिया। वह क्यों? वह यों, कि उन दिनों आप लाहौरके गवर्नमिन्ट कालिजकी एम०ए० श्रेणीमें पढ़ा करते थे **और** आप प्रायः मेरे घरपर आया-जाया करते थे। मैंने एक दिन साधारण तौरपर आपसे ज़िक्र किया कि यार मेरा विचार है कि मैं भी**"उत्तर रामचरित"** को नाटकके रूपमें लिखूं। यों तो रामायणका प्रतिकाण्ड, प्रति सर्ग, प्रति चौपई और प्रति चौपईका प्रति अक्षर मानव-जातिके लिये कल्प वृक्ष है किन्तु **"लव-कुश-काण्ड"** उस कल्प वृक्षका वह स्वर्गीय फूल है कि जिसके पवित्र सुगन्धसे समस्त स्त्री-जातिकी पति-भक्ति महक उठती है। आपने मेरे विचारका बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें समर्थन किया **और** मुझसे कहा कि आपके इस नाटक-यज्ञको सर्व प्रकारसे सफल बनानेके लिये मैं भी आपका हाथ बटाऊंगा, **और** आपने अपनी इस प्रतिज्ञाको यथा-शक्ति निभाया, जिसके लिये मैं जीवन पर्यन्त आपका कृतज्ञ रहूंगा क्योंकि आपने ही प्रथम वार मुझे बङ्गालके सर्वश्रेष्ठ नाट्यकार **बाबू द्विजेन्द्रलालरायका "सीता"** नाटक बंगला भाषामें अर्थ सहित पढ़कर सुनाया, जिसे सुनकर मैं अवाक् सा रह गया **और** जो विचार बिजलीके पर लगाकर मेरे हृदया-

काशमें चमक रहे थे, पानी पानी हो गये—मेरा उत्साह, मेरी उमंगें और मेरी हार्दिक इच्छायें सबकी सब मुझे छोड़कर मालूम नहीं कहां लोप हो गईं।

इसी प्रकार निराशाकी गहरी नीन्दमें सांस लेते हुए दिनपर दिन, सप्ताहपर सप्ताह और महीनोंपर महीने गुजरने लगे। अकस्मात् एक रात, कि जिस रातको पूर्णिमाका चान्द अपनी सुधापूर्ण किरणोंसे नहला रहा था; जिस रातको समीर अपने प्राकृतिक, शीतल, मन्द, सुगन्ध आभूषणोंसे सजाकर Nature(प्रकृति) को भी पागल बना रहा था, उसी, आह उसी दिव्य मनोहारिणि रातको, एकान्तका सन्नाटा मेरी निःसहाय, निराश आत्माको अपना मन-मौजी सङ्गीत सुनाने लगा, जिस संङ्गीतका एक एक स्वर मेरे रोयें रोयेंमें प्रवेश कर गया। ज्यों ज्यों स्वरोंका उतार-चढ़ाव स्मृति-पटपर क्रीड़ा करने लगा त्यों त्यों "जनक-नन्दिनी" नाटकको लिखनेके भूले हुए विचार फिर मेरी आंखोंके सामने आशाका रूप धारणकर नाचने लगे,जिन्हे इस अवस्थामें देखते ही मैं उन्माद भरी ध्वनिमें जोर जोरसे चिल्लाने लगा कि"मै अब लिखूंगा। अवश्य लिखूंगा"। आखिर मैंने लिखा—

इतनेमें समयने १९१६ का वासन्ती जामा पहना, जिसका स्वागत मनानेके लिये स्वर्गीय मि० सी० पी० खटाऊ की "एल्फ्रेड कम्पनी" लाहौरमें आ पहुंची। बस फिर क्या था, इधरसे मैं भी अपने सारे उत्साहकी पूंजीको बगलमें दबाय दनदनाता हुआ खटाऊ साहिब के पास पहुंचा और उन्हें अपना लव-कुश नामी नाटक सुनाने लगा, जिसे सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुये और हंसते हुए कहने लगे कि 'शैदा' साहिब! आपका यह नाटक हमारा हुआ। मैंने कहा "अहोभाग्य! जो आप इसे अपनावें।" कम्पनी लाहौरमें लगभग ४ महीने रही किन्तु दैववश मुझे लाहौर रहनेका अवकाश न मिला। जब मैं लौटकर लाहौर वापस आया तब कम्पनी देहली चल दी—अस्तु।

जो जो नोट ख ... ने मुझे इस नाटकको स्टेजके विषयमें बदलनेके लिये लिखवा ... अनुसार नाटकको ठीक करनेका प्रयत्न किया। उसी वर्षमें मे ... **ला मूलराजजी जाली** की "The New Empire Th ...." लाहौर आ विराजमान हुई (जो अन्तमें मेरे ही गले पड़ ... पनी थी ; फिर मिस्त्रियों, दरजियों और चित्रकारोंको नई स ... पोशाकें बनानेकी आज्ञा दी गई। खूब ज़ोरोंके साथ rehe... लगे। किन्तु दाने दानेपर किस्मतकी मोहर लगी है, जिस वस्तुके ... हो वहीं जाकर रहती है। यही बात मेरे इस नाटकके साथ हुई—अथात् ... तो **लाला मूलराजजी** के बीमार हो जानेपर जब कम्पनीका काम मन्दा पड़ा तो मैंने कम्पनीकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। जब हम मालिक बने तो दूसरी उलझनोंने सिर न उठाने दिया। आज अमुक एक्टर भाग गया तो कल अमुक एक्टरेसका सिर दुखता है, इत्यादि झमेलोंमें फँसा रहा। बड़ा यत्न किया कि किसी तरह यह नाटक स्टेजपर हो, पर आखिर जब कम्पनीको बन्द किया तो कम्पनीके सामानको भूत समझकर **अम्बाले** में छोड़ मा-बदौलतने **कलकत्ता** आकर दम लिया। यहां पहुंचते ही भारतीय रंग-मंचकी महारानी **मिस गौहर**ने (जिसके साथ हमारी पुरानी जान पहचान थी) हमारा एल्फिस्टंन थियेट्रीकल कम्पनीके साथ 'एग्रीमेन्ट' करा दिया। मेरे तीन चार नाटक हो जानेके पश्चात् मैंने फिर इसी नाटकको पहले पहल **एल्फ्रेड कम्पनी** द्वारा १० अक्तूबर १९२१को अभिनीत करवाया। किन्तु मुझे वह घटना जीवन पर्यन्त न भूलेगी कि जिस समय यह नाटक **"सीता-बनवास"**के नामसे प्रथम बार **एलफ्रेड** के रंग-मंचपर हो रहा था, उस समय अकस्मात् **स्वर्गीय मि० ...टाऊ** की दिव्य मूर्ति मेरे नेत्रोंके सामने साक्षात रूपमें हँसते हुए कहने ...गी कि 'शैदा' साहिब, देखा ! आखिर मेरी कम्पनीने ही आपके इस ...व-कुश' नाटकको खेला।" मैं इस स्वर्गीय ध्वनिको सुनकर निस्तब्ध हो

गया और इस बातका मुझे विश्वास हो गया कि प्रत्येक बात अपने समय पर और अपने स्थानपर ही होती है—अस्तु ! खेल खूब चमका। जनताने इसे अपनाकर मेरे मरे हुए उत्साहको फि से जिन्दा कर दिया।

अन्तमें यह भी लिख देना उचित होगा कि इस नाटकमें बंगालके साहित्य-शिरोमणि **श्रीयुक्त पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** के **"सीता-बनवास"**का साधारणतया और **द्विजेन्द्र बाबू** के **सीता** से विशेष रूपसे सहाय ग्रहण किया गया है जिसके लिये मैं दोनों ग्रन्थकारोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ।

२९, माटलेन कलकत्ता
२५,जनवरी, १९२६

विनीत—

"शैदा"
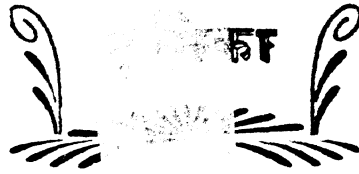
हिमालयके सर्वोच्च । धोगतिको प्राप्त अगणित जलधारके प्रबल प्रवाहकी ।संख्य अभिनय-धाराओंके अविरल संपातसे यह भारतीय …ओंकी वनस्थली परिपूर्ण सी हो गई है। किन्तु इनमेंसे कितनोंके द्वारा जनताको सुख एवं शान्ति मिली? कितनी, पाठकोंके हृदय नालियोंहीमें रुक गईं और कितनी पृथ्वीपर आते ही शिक्षित-जन-समुदायके आदर्श-मार्तण्ड की प्रखर मरीचि-मालाओंसे उत्तप्त स्थानोंमें बिलीन हो गईं? जब इन विषयोंपर दृकपात करते हैं तो हृदय दहल उठता है, उत्साहेन्द्रियाँ असीम निराशाके भयंकर भूचालमें निस्तब्ध हो जाती हैं। और अन्तमें यही कहना पड़ता है कि क्या ही सुन्दर होता यदि ये सब धारायें एक ही मार्गका अनुसरण करतीं और अपने निर्मल शिक्षा तथा गौरव-जलसे भारतीय-जन-हृदय-मरुभूमिको फिर लहलहा देतीं। परन्तु यहां 'तो अपनी २ खंजड़ो और अपना २ ताल' वाली लोकोक्ति पूर्णतया चरितार्थ हो रही है। ।स्तु, इनके प्रवल प्रवाहको सहसा रोकना मानो भयङ्कर सर्पके खमें हाथ डालना है इसलिये हमें उचित है कि निर्मल जलपूर्ण-राओंहीका स्वागत करें और अन्य प्रतिमूर्तियोंको पागलोंका लाप समझ उनसे दूर रहें।

यों तो कुछ ही वर्षोंमें अनेक नाटक देखनेमें आये हैं जिनका अभिनय क्षणमात्रके लिये दर्शकोंके हृदय-मञ्च ही पर देखा जाता है, अन्यत्र नहीं—जिसका मुख्य कारण यही है कि बिना नाटक कौशलके प्राप्त होने ही पर लेखकगण अपनी टाँग अड़ा देते हैं और व्यर्थमें नाट्यकार कहलाकर अपना बचा सम्मान भी गँवा बैठते हैं। उनकी लेखनीमें वह भाषाकी लोच नहीं, वह आनन्द नहीं जो एक अनुभवी नाट्यकारकी लेखनीमें पाये जाते हैं। और इन्ही अनुभवी लेखकोंमें पण्डित 'शैदा' जी का भी एक उच्च स्थान है जिन्होंने अपने लगभग ३२ वर्ष इसी क्षेत्रमें निर्विघ्न व्यतीत किये हैं। यद्यपि इनके अधिकांश नाटक पारसी रङ्गमञ्चों ही को सुशोभित कर रहे हैं तथापि विश्वरङ्गमञ्चपर अभिनीत होने वाला यह दूसरा ही नाटक है जिसका दिग्दर्शन करानेका यहां प्रयत्न किया जाता है।

नाटकका नाम

यद्यपि इसके वर्तमान नामकरण तथा इसके अन्तर स्थित वृत्तान्तमें अत्यन्त विभिन्नता देख पड़ती है क्योंकि 'जनक-नन्दिनी' से जगत्जननी जानकीके पूर्णजीवन वृत्तान्तहीका बोध हो सकता है तथापि लेखकने इस नामको रखकर अपने व्यंगोक्तिका पूर्ण परिचय दिया है। 'जनक-नन्दिनी'का अर्थ है पिताको प्रसन्न करने वाली। और सत्यतः जानकीमें यह गुण भी था। राजा दशरथके घर भी आकर उनका यह गुण नहीं घटता, अपरंच आगपर तपे हुए स्वर्णकी भांति और भी देदीप्यमान ही होता जा रहा है। कि

नाट्यकारका भी व्यङ्ग्य ... सुन्दर है कि वहीं पिता, पति, जनादि-नन्दिनी कि ... एक समय बिना किसी अपराधके भी जनोंको अ-नां ... होती है और अगण्य प्रमाणोंके उपस्थित होनेपर भी ... नन्दिनी नहीं होती।

नाट ... "प्लाट"

'प्लाट' के सम्बन्धमें ... ना मानो सूर्यको दीपक दिखाना है। भला ऐसा कौन ... होगा जो माता जानकीके अन्तिम जीवन वृत्तान्तसे न प... । केवल जो लेखककी नई कल्पना है अर्थात् जहाँ लोभ, मोह कर्मादि, शूर्पणखा तथा रामधन का प्रवेश उसने कराया है उन्हींका कुछ विवरण यहां देना युक्तसङ्गत होगा। लोभ मोहादिको अभिनयके प्रथम दृश्यमें प्रवेश कराकर लेखकने वास्तवमें इसे और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। इन्हें देखकर मुझे तो "नैषध-चरित्र"का वही स्थान चक्षुगोचर होने लगता है जहां कलि भी नलपर विजय पानेके लिये लोभ मोहादिको आह्वान करता है। कर्मको स्थान देकर लेखकने एक बड़ी भारी क्षतिको पूर्ण किया है। रामको कर्माधीन बनाकर उसपर सीता-निवार्सन-दण्डके आरोपित दोषको साफ़ साफ़ बचा लिया है। यदि कर्मकी करामात न होती तो राम यह दण्ड कभी न देते जो पाठकोंको द्वितीय अंकके छठें दृश्यके पढ़नेसे पूर्णतया परिज्ञात हो जायेगा। वहां रामकी अगाध पत्नी-भक्तिका जहां उस भक्तिके आगे गुरु भी कुछ नहीं है, पूर्ण परिचय मिलता है। रामधन द्वारा यह बतलानेका प्रयत्न किया गया है कि किस

प्रकार एक व्यक्ति अपने वचन जालमें फंसकर अपने उत्तम विचारोंकी आहुति देकर अपने बचनको जीवन पर्य्यन्त निभाता है। कर्म उसे गदहेपर तक चढ़ाता है, उसकी अनेकों दुर्गति होती है किन्तु वह अपने प्रणपर अटल है। शूर्पणखाकी कल्पना और किसी भी लेखकने आगे नहीं की है। यद्यपि इसकी कथा रामायणके अरण्यकाण्ड हीमें समाप्त हो जाती है, तथापि इसका मरण कहीं नहीं दिखाया गया है। इसी सहारेपर लेखकने "छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति" को पूर्णतया चरितार्थ करनेके लिये इसे भी ले लिया है और अपना अच्छा काम निकाला है। कथा तो करीब एक ही है। अभिनय अन्तर्गत अभिनय, यह कविवर भवभूतिकी पूर्णतया छाया है किन्तु इसमें एक अपूर्व गुप्त कौशल विराजमान है जो पाठकोंको पढ़नेहीसे परिज्ञात हो जायेगा। कर्म इस अभिनयमें वैसाही प्रधान है जैसा Othello में Iago; Merchant of Venice में Shylloc और मुद्राराक्षसमें चाणक्य। किन्तु अन्तर इतना ही है कि इनके भाव बुरे थे और कर्मके नहीं। उसने कभी भी रामके विरुद्ध आचरण नहीं किया जो उसके चरित्र चित्रणमें पूर्णतया दर्शाया गया है।

नाटककी भाषा

यद्यपि इसकी भाषा साहित्यिक दृष्टिसे सर्वत्र एक सी नहीं है तथापि रङ्गमञ्चका ध्यान रखते हुए यही कहना पड़ता है कि आधुनिक नाटकोंमें यह अपने ढङ्गका अकेला है। उर्दू शब्दोंका

यत्र तत्र समावेश [illegible] किन्तु ये प्रतिदिनके बोलचालके शब्दोंमेंसे हैं जो [illegible] खटकते।

[illegible]त्रण

इसमें तो सन्देह [illegible] कि रामचन्द्रकी पत्नी-भक्ति तथा सीताकी पति-भक्तिमें [illegible] अपनी प्रभावशालिनी लेखनीका पूर्ण परिचय दिया है [illegible] उल्लेख मैं पहले कर चुका हूं। धीरोदात्तनायकराम [illegible] कठपुतलियोंका नाच नाचते हैं और समाज तथा [illegible] बन्धनमें पड़कर अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं। सबसे बढ़कर जो लेखकका कौशल इनके चरित्र चित्रणमें है वह यही है कि रामको नरतनधारी बना कर्माधीन-कर उन्हें सहसा सब पापों तथा दोषोंसे मुक्त कर दिया है क्योंकि त्रुटि तथा दोष मानव-जीवनका पहला श्राप है।

कर्मकी जिस प्रकार प्रधानता है उसी प्रकार लेखकने भी उसके चरित्र-चित्रणमें कुछ शेष नहीं रक्खा है। यद्यपि लोभ मोहादिको दूर हटा भावीके कहनेपर वह रामके मनपर अधिकार जमा रहा है तथापि वह रामके आधीन है। अपने मनमें वह उन्हें वही परमात्माका अंश समझता है जो उसके कथनसे पूर्णतया ज्ञात होता है। पृष्ठ १३५ तृतीय अङ्कमें साफ साफ खुल जाता है जब वह कहता है :—

'सुकर्म या दुष्कर्म जो-कुछ हो यह ज़िम्मेदार है;
निर्दोष हूं 'शैदा' मैं क्योंकि राम जाननहार है।

बस पाठकवृन्द ! इसीसे उसकी सफाई समझलें, अधिक लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं । पुस्तकके ४५ वें पृष्ठपर जो कर्मका जीवके सम्बन्धमें कथन है वह अपने ढंगका निराला ही है । वहीं लेखककी प्रतिभा तथा सांसारिक ज्ञानका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है जहां वह कहता है :—

'विचित्र नाटक है जिन्दगीका, विचित्र इसके है अंक तीनों ।
बनाके बालक जवान बूढ़ा उमरका पर्दा गिरा रहा है ।

अब मैं यहां अधिक न लिखकर इस रत्नको साहित्यिक जौहरीयों ही पर छोड़ देता हूं कि वे इसका दाम लगाव और अपने विचार प्रकट करें ।

रामधन और शूर्पणखाके चरित्रके विषयमें मैंने पहले ही उल्लेख कर दिया है किन्तु इतना कह देना उचित है कि रामकी करुणाने अन्तमें दोनोंपर पूर्णतया विजय प्राप्त की और चिरशत्रु शूर्पणखाको भी मित्र बनाया । ८७ वें पृष्ठपर जहां शूर्पणखा हाथमें विष लेकर दोनों भाइयोंको पिलाने आती है और ज्यों राम लेनेको आगे बढ़ते हैं उसका हृदय दहल जाता है और रामके पुनः मांगनेसे वह विष दूधमें पलट जाता है । शूर्पणखा और रामधन देख आश्चर्य्यित हो जाते हैं और शूर्पणखा यही कहकर सर्वदाके लिये लोप हो जातो है जो अत्यन्त उल्लेखनीय प्रतीत होता है ।

"क्षमा नाथ ! क्षमा ! मैंने आज आपका असली स्वरूप देखा । नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार ! जै प्रभु ! जै प्रभु !! जै प्रभु !!!"

[illegible] हार

'प्लाट', भाषा, भाव, [illegible] चित्रणके अवलोकनसे लेखक-की भविष्य प्रतिभाका [illegible] प्त होता है और मालूम होता है कि रङ्गमञ्च ही को ध्या[illegible] लिखनेसे लेखकने अपनेको पूर्णतया प्रकट नहीं किया [illegible] हरण हमें पुस्तकके ८, ४१, ६६ वें तथा और जगहोंपर [illegible] लाई देते हैं। इन्हें पढ़नेसे कभी २ स्वर्गीय बाबू द्विजेन्[illegible] सजीव प्रतिभा सामने खड़ी हो जाती है और हृद[illegible]नन्द सागरकी कलित कमनीय लहरोंमें कल्लोल करने लगता है। लेखकने जो भाषा तथा भाव अपने नूतन अभिनय 'ज़वानीकी भूल'में दर्शाया है वह मेरे उक्त प्रमाणको सहस्र गुना पुष्ट कर रहा है जिसका परिचय पाठकोंको रङ्गमञ्चपर उसे देखने हीसे प्रतीत हुआ होगा। अन्तमें मैं इस भूमिकाको समाप्त करता हूं और पूर्ण आशा करता हूं कि इस अभिनयका जनतामें अधिक आदर तथा सम्मान होगा क्योंकि यह अपने ढंगका निराला है। पुस्तकमें कहीं २ छन्द भङ्ग तथा भाषाकी अशुद्धि भी देखनेमें आई है जो मुझे प्रेस पिशाचोंके प्रचण्ड ताण्डव नृत्यका प्रत्यक्ष प्रमाण ही प्रतीत होता है क्योंकि लेखकसे ऐसी भूलें सर्वथा असम्भव हैं।

माहेश्वरी विद्यालय,
कलकत्ता

जनार्दन भट्ट एम० ए०

मनुष्य इच्छा पूर्ण हो सकती है श्री तदबीरसे ।
पर कर्मका लिखा नहीं टलता किसी तदबीरसे ॥

-यही कि—

रामपर चलती नहीं है कामरूपी आग की ;
रामके फूंकार में शक्ती है काले नाग की।
नाशही करना मेरा जो आपको दरकार है ;
तो मुझे जाना वहां फिर हर तरह स्वीकार है।

पाप—चुप, चुप, कायर ! भीरू !! नीरसात्मा !!! क्रोध !

क्रोध—(उत्तरमें सिर झुका लेना)।

पाप—लोभ !

लोभ—(सिर झुकाना)।

पाप—मोह !

मोह—(सिर झुकाना)।

पाप—अहंकार !

अहंकार—(सिर झुकाना)।

पाप—(बिगड़कर) हैं ! सबके सब बागी दुराचार। धिक्कार तुम सबपर धिक्कार।

एक प्राणी पर विजय पाने की भी शक्ती नहीं ;
हो गया निश्चिय तुम्हारी मुझपे कुछ भक्ती नहीं।

क्रोध—भगवन ! क्षमा कीजिये। ब्रह्माने यह लिखा ही नहीं किंतु क्या करें हम अनाथ हैं—

क्रोधको करती है शीतल राम की शीतल छटा ;

लोभ— लोभको हरती है पलमें राम की गम्भीरता।

मोह— मोह खुद हो जाये मोहित देखकर उसकी प्रभा;

अहंकार—और मेरे दम्भको हरती है उसकी नम्रता।

पाप— तो सभी तुम मर गये मेरे लिये संसार में;

मैं अकेला रामको जीतूंगा एकही बार में।

(भावीका अकस्मात प्रगट होना)

भावी—शांत, धर्म और मुक्तिके शत्रुओ! शांत। अयुध्यापुरी जानेका विचार छोड़ दो, मैं रामपर विजय पाऊंगी क्योंकि—

मैं हूं भावी जानती हूं भेद हर तकदीर का;

इस लिये फेरूंगी मैं सीता से मन रघुवीर का।

कर्म के द्वारा वह पलटा खायेगा संसार में;

जो असम्भव है नजर आयेगा वह आकार में।

पाप—माता! जो आज्ञा।

भावी—किन्तु ठहरो, मैं अभी कर्मको बुलाती हूं—तुम्हारी शंका मिटाती हूं। कर्म! कर्म!!

कर्म—(अकस्मात प्रकट होकर) प्रणाम मातेश्वरी! आज्ञा कीजिये; हम आगये।

भावी—अयुध्यापुरी जाओ; रामके मनको अशान्त बनाओ। सुना! अपना कर्त्तव्य निभाओ।

कर्म—वाह हमको अच्छा काम मिल गया "अयुध्यापुरी जाओ, रामके मनको अशान्त बनाओ"—अस्तु। यह तो होगा किन्तु मैंने स्वयम् कर्म होकर भी आज तक "कर्म" के गुप्त भेदको न पाया, बहुत ही सिटपिटाया किन्तु कुछ

समझमें न आयी—इसकी माया। "क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया ?"

भावी—जय—विजयको वैकुण्ठधामसे मृत्युलोक पहुंचाया; नरसिंह बनकर प्रह्लादको बचाया; वामनका रूप धारण-कर बलिको पाताल पठाया; गजको ग्राहसे छुड़ाया; इत्यादि बहुत कुछ समय और कर्मके द्वारा खेल रचाया क्यों अब कुछ सुझाया ?

कर्म—हां मातेश्वरी ! अब कुछ मतलब पाया। क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया ? सत्य है—

कर्म के आधीन है सब काम इस ब्रह्माण्ड का।
मैं दिखाऊंगा तमाशा आज "लव–कुश काण्ड" का।
कर्म का तो आदिसे ही शुभ–अशुभ से मेल है ;
वास्तव में कर्मका करना भी झूठा खेल है !

[गाना]

यह जग पल भर का मेला है ;
जैसे पानी का रेला है,
जो कड़वा और करेला है,
फिर काहे बना अलबेला है—यह।
यहां काम क्रोध मद लोभ मोहका
मानो बड़ा झमेला है,
निज मतलब का गुरु—चेला है,
फिर काहे बना अलबेला है,

मनको अपनें वशमें रखना,

इन पांचों से बचना, बचना,

तू समझ समझ अब बेला है,

फिर काहे बना.............

कर्म की गंगा बह रही, हर दम मनके बीच।
करले निर्मल आपको, फेंक पाप का कीच॥
हिरदय जब निर्मल हुआ, कर्म न खोटा होय।
कर्म न जब खोटा हुआ, बाँह—न पकड़े कोय॥

तीसरा दृश्य।

स्थान—रामका शयनगृह ।

[राम सोये हुये हैं। आकाश मण्डलसे अप्सराओंका उतरना और]

[गाना]

विश्णु कोटि प्रतिपालम्, ब्रह्मकोटि विसर्जनम् ।
रुद्र कोटि प्रमर्दये मातृ कोटि विनाशनम् ।
सर्व सौभाग्य निलयं, सर्वानन्दैक दायकम् ।
कौशल्या नन्दनं रामं, केवलं भवखंडनम् ।

(गाना समाप्त होने पर कर्मको प्रगट होना)

कर्म— शीलके समुद्र, सुख-मन्दिर, कृपाके पुञ्ज,
लीला अनूप भूप में दिखा रह्यो ।
रूप है अनन्त रुप विष्णू स्वरूप,
आंख मूंद सुखमा सुख शान्ति बरसा रह्यो ।
नीत, गुण कर्म को बखाने कौन,
सर्व सृष्टि आपमें आप उसमें समा रह्यो ।
जानकी पति राम, नैना अभिराम,
श्याम राम पर निद्रा की छटा सुहा रह्यो—
—हे रघुकुल श्रोमणी ! संसारमें आपके अवतार धारण करनेका जो मूल कारण था उसे समाप्त कर चुके; अर्थात् लंकेशपर विजय पाकर राक्षस भूमि लंकाको

जलाकर सुख और शान्तिके अमूल्य धनको प्राप्त कर चुके। किन्तु अभी संसारको एक और दृश्य दिखना है जो आपके जीवनका वह भयानक भाग होगा कि जिसमें प्रवेश करनेसे आपको अवश्य क्लेश होगा किन्तु भारतको; भारत निवासियोंको; नीति—मर्य्यादाका पवित्र उपदेश होगा।

(बिजलीका कड़कना, कर्मका छोटा रूप होते जाना और अन्तमें रामके शरीरमें प्रवेश करना)

कर्म—(पहलू बदलते हुए) मैंने अपना कर्त्तव्य निभानेके लिये रामके शरीरमें अपना घर बनाया; अब संसारको दिखाऊंगा विचित्र माया। क्यों कुछ आप ......

(सीनके पिछले भागमें रावणका सीताको अशोक वाटिकामें तंग करते हुए नजर आना रामका घबराकर जाग्रतावस्थामें आना)

राम—मन और कर्मके आधीन रहकर जीवात्मा शांतिको कभी प्राप्त नहीं कर सकता। जिस प्रकार शरीर जलसे; मन सत्यसे और आत्मा भगवत-भजनसे पवित्र होते हैं; उसी प्रकार जीवनके श्वास शान्ति-धारासे पवित्र होते हैं। यदि शान्ति नहीं तो जीवन सुख नहीं। आह! वह दण्डक वनकी शीतल पवन; पक्षीगणका मन भावन चहचहावन; पंचवटीके सरोवरमें कवँलोपर भवँरोंका गुञ्जार; प्रकृतिका मन-हरण निखार इस रणवासकी

दीवारमें; इसके जड़रूप शृङ्गारमें; राज्य पदार्थके मायावी अलंकारमें कहां ?

धन भोगों की खान है, तन रोगोंकी खान।
ज्ञान सुखों की खान है, दुख की खान अज्ञान ॥
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र हरि भजन कर, होत तभी कल्यान ॥

(चन्द्रमाको सम्बोधित करते हुये) निःसन्देह; निःसन्देह ओ रात्रीके मुकुटमणि! तुम्ही हो, संसार मात्रमें पशु, पक्षी, मनुष्य और ऋषिपर शान्तिमय सुधापूर्ण धारा बरसानेवाले केवल तुम्ही हो।

(चन्द्रमाका अकस्मात सूर्यमें बदल जाना) हैं क्या? क्या? मेरे दुखका काल प्रातः कालके स्वर्ण रथपर सवार होकर आ गया? हां हां आ गया। जब तक प्रजाको मेरे जीवनसे, मेरे न्यायसे, मेरे शासनसे और मेरी राज्य-भक्तिसे सुख न मिलेगा तब तक रामके जीवनपर धिक्कार।

लक्ष्मण—(प्रवेशकर) पूज्य भ्राता! नमस्कार।

राम—कौन? लक्ष्मण—सुखी रहो।

लक्ष्मण—भैय्या! आपके मुखमण्डलपर व्यग्रताकी बदली छानेका कारण?

राम—आत्मिक बलका खण्डन।

लक्ष्मण—किसने किया?

राम—कर्मने।

लक्ष्मण—यह हो नहीं सकता—

शीलता और नम्रता के साक्षात आकार हो ;
न्याय कर्त्ता हो प्रजा के परम पालनहार हो ।
वीरता, गम्भरिता में सबके तुम सरदार हो ;
राजनीती और मर्य्यादा के तुम अवतार हो ।
है उदय संसार में सूरज तुम्हारे नाम का ;
राज्य है तो राज्य केवल सूर्यवंशी राम का ।

आकाशवाणी—निःसन्देह ! निःसन्देह !! निःसन्देह !!!

लक्ष्मण—तिसपर,—

लक्ष्मी रूपी सिया के हो पती रघुबीर तुम ।
वह दया की प्रतिमा है धर्मकी तस्वीर तुम ।
जिस जगह केवल दया का धर्मका व्यवहार हो ।
उस जगह मानूं मैं कैसे—व्यग्रता से प्यार हो ॥

राम—सिया ! प्रिय सिया ! !

सिया ने पी की सेवा से सिया है सर्व उलझन को ।
पतीव्रत धर्मके बल से किया है वश मेरे मन को ॥
मगर रावण के घरका दृश्य जिस दम याद आता है ।
तो दिलमें दर्द आंखों में अंधेरा छाय जाता है ॥

लक्ष्मण—भैया ! इससे आपका तात्पर्य ?

राम—सन्तापका राक्षस मेरे सुख और शान्तिका विनाश करनेके लिये अन्तःकरणका द्वारपाल बना है ।

लक्ष्मण—सन्ताप तो केवल अपने ही मनका विचार होता है ।

राम—परन्तु अन्तमें विचारसे ही उद्धार होता है।

लक्ष्मण—उद्धार तभी होता है जब विचार अच्छे हों।

राम—सन्तोष और शान्तिका तभी नाश होता है जब विचार सच्चे हों,—

दिनको मैं रहता हूं हरदम सोच की मँझधार में ;
रात भर रहता हूं फिर रावण के कारागार में।
देखती है जिस जगह सीता को मेरी आत्मा ;
स्वप्न में भी शान्ती देता नहीं परमात्मा।

लक्ष्मण—आह! श्रीमाता भगवती सीताके पतिव्रत धर्मके विषयमें विचार भी करना महापाप है।

राम—परन्तु वह दृश्य मेरी आत्माके लिये प्रत्यक्ष साँप है।

लक्ष्मण—स्वप्नपर विश्वास लाना रामका काम नहीं।

राम—अब तो विश्वास किये बिना रामको आराम नहीं।

लक्ष्मण—कारण ?

राम—कर्मकी यही इच्छा है।

लक्ष्मण—कर्म? कर्म तो आपके आधीन है।

राम—परन्तु मनकी इच्छा महाप्रवीण है।

लक्ष्मण—मनको तो आप बता चुके, प्रचण्ड अग्निमें श्रीमाता सीताके स्त्री धर्मकी परीक्षा लेकर संसार मात्रका भ्रम मिटा चुके।

राम—परन्तु मेरे भ्रमकी ज्वाला अभी शान्त नहीं हुयी।

लक्ष्मण—तो फिर इसे हठधर्मी कहते हैं।

राम—नहीं बल्कि संसारी लोग इसे कर्म कहते हैं।

लक्ष्मण—क्या कर्मके आधीन रहकर जगदम्बा जगजननी सीताके लिये अपने भ्रमको बढ़ाना नीतिके अनुसार है ? नहीं, कभी नहीं,—

सत्यता डरती नहीं झूठों के झूठे वार से ;
शीलता घटती नहीं गंगा की अग्निधार से।
लग नहीं सकता है धब्बा उनके शुद्धाचार में।
जानकी माता सती देवी है वह संसार में।

राम—वह निःसन्देह देवी है, सती है, कालिमा रहित चन्द्रमा है, गंगासे भी अधिक पवित्र है किन्तु—

यह मेरे बशकी नहीं है बात होवनहार है ;
मूल कारण है यही जो राम भी लाचार है।

लक्ष्मण—क्या मर्य्यादा इसीका नाम है ?

राम—लक्ष्मण ! सीमासे बाहर न जाना, यहां राम है।

लक्ष्मण—सपनेपर विश्वास लानेवाले, मेरी माता सीताके स्त्रीधर्मके विषयमें अपने भ्रमको बढ़ानेवाले, ऐसे रामको मेरा प्रणाम है।

राम—(क्रोधित होकर) हैं क्या कहा ?

वशिष्ठ—(शीघ्रतासे प्रवेशकर) शान्त, दशरथनन्दनों ! शान्त।

राम—कौन ? महामुनि गुरु वशिष्ट।

लक्ष्मण और राम—प्रणाम, गुरुदेव ! प्रणाम।

(टेबुलोपरसनिका बदलना)

चौथा दृश्य ।
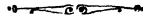
स्थान—पुष्प वाटिका ।

[सीता, उर्मिला तथा सखियोंका गाते हुये प्रवेश]

[गाना]

फुलवारीकी शोभा बढ़ाय रही,
अनुराग अपार दिखाय रही ।
रसको बरसाय वहाय रही,
मनके नदको उमड़ाय रही ।
गात रुप लजाय सुहाय रही,
अपने पर आप ठगाय रही ।
इठलाय रही, सुख पाय रही,
मन भाय रही, छबि छाय रही ।

सखी १—सुखदायक सावनके दिन हैं–सब दृश्य महा मन भावन हैं ।
जलसे परिपूरत भूमि हरी–सब ओर घिरे नभमें घन हैं ॥

„ २—पिक चातक मोर सुबोल रहे--गिरि कानन मोह रहे मन हैं ।
इस सावनके, मन भावनके--अनुकूल सभी सुख साधन हैं ॥

„ ३—तिसपर हमारी महारानी, परम सुख दानी, पद्मा, रमा, पद्म-मुखी ललामा सीताजीने इस रमणीक समयको और भी रसनीक बनाया है ।

उर्मिला—बहिन सीता ! क्यों आज क्या है जो आनन्द भरे

सरोवरमें कुमुदिनीकी ऐसी अवस्था है? बिजली जैसे तेजस्वी रूपकी ऐसी दशा है?

जैसे बदली, बदली घनमें, बिजरी पर बदली छाय रही।
तैसे इन लोचनकी बिजरी, चिन्ता—बदलीसे मन्द भई॥
काहे प्यारी! रसनीकन बोल अमोल सुनावन भूल गई।
दीदी! इन होठनकी वह हँसी, किस सोच बिचारने छीन लई॥

[सीताके आह भरनेपर उर्मिला सखी दलको टल जानेका इशारा करती है। सबका जाना।]

दीदी! अब तो एकान्त स्थल है; कँवल है या भँवरोंका दल है। किन्तु कोई भेदकी रंगत उड़ानेवाला नहीं। तुम्हारे रहस्यको दूसरे कानोंतक पहुँचाने वाला नहीं।

सीता—रहस्य? उर्मिला! तुमसे मेरा कोई रहस्य छिपा है?

उर्मिला—तो फिर आना कानी क्यों करती हो?

सीता—नहीं, नहीं, कहती हूं सुनो! (इधर उधर देखकर आह भरना) सुनो!

कल स्वप्नमें दो पुत्र मेरे गर्भसे उत्पन्न हुये।
जिनकी प्रभासे मेरे सुख, जीवनके सुख, खण्डन हुये॥
तजकर वह मुझको चल दिये मैं हाथ ही मलती रही।
उस घोर बन विरहा अनलमें जन्म भर जलती रही॥

उर्मिला—समझी, किन्तु दीदी! क्या तुमने यह बात सुनी नहीं कि गर्भवती स्त्रीको जो भाव दिनमें अपनी मायावी शक्ति दिखाते हैं वही रात्रीको स्वप्नके रूपमें उसे डराते हैं।

वास्तवमें स्वप्न मनके भावका अनुमान है।
स्वप्नको जो सत्य माने वह महा अज्ञान है॥

स्वप्नके पीछे न बहनाँ ! इस कदर हैरान हो ।
क्योंकि तुम तो सर्व नारी दलमें बुद्धीमान हो ॥

ता—किन्तु जब चिन्ताके तीक्ष्ण बाण प्राणमें लगते हैं तो सर्व-बुद्धिमानीका नाश हो जाता है ।

र्मिला—फिर ऐसी चिन्ता करनेसे फ़ायदा ?

ता—मनकी दुर्बलता ।

र्मिला—दुर्बलता क्यों होती है ?

ता—दुखसे ।

र्मिला—दुख क्यों होता है ?

ीता—कर्मसे ।

र्मिला—अस्तु—जब ऐसी भयंकर चिन्ता उत्पन्न करनेका मूल कारण कर्म है फिर तो उस कर्मका करना ही अधर्म है ।

क्यों न हम उस कर्मको ही छोड़ दें संसारमें ।
उलझने हों जगतकी जिस कर्मके आकारमें ॥

सीता—किन्तु यह थोड़े मेरे वशकी बात है !

उर्मिला—फिर वही बात करो जो तुम्हारे वशकी हो ।

सीता—अर्थात् ?

उर्मिला—अर्थात कल जहांतक आप बीती कथा सुनाई थी आज उससे आगे सुनाओ, इसी युक्तिसे अपने आतुर मनको बहलाओ ।

सीता—वह तो कल समाप्त कर चुकी ।

उर्मिला—अस्तु । बहिन सीता ! लंकापति रावणके स्वभाव-
गुणका बखान तो मैं तुम्हारे श्रीमुखसे सुन चुकी, किन्तु
अब चित्र द्वारा उसका आकार देखनेकी अभिलाषा है ।

सीता—अच्छा आज वह भी देखो ।

[सीताका एक वृक्षके तनेपर रावणका चित्र खींचना]

उर्मिला—आहा ! धन्य हो । सर्वगुण पूर्ति, पतिव्रत धर्मको
साक्षात मूर्ति ! धन्य हो । वाह वाह खूब चित्र बनाया ।
लो बहिन ! अब मैं जाती हूं ।

सीता—क्यों ? क्या मेरे देवर भैय्याके लिये व्याकुल हो रही
हो ? दमभरके लिये भी उनका वियोग सहा नहीं जाता !

उर्मिला—जी नहीं, जेठजीके आनेका समय हो गया है (खांसनेकी
आवाज़ सुनकर) लो वह आ भी गये । (उर्मिलाका जाना ।
श्रीरामका प्रवेश ।)

सीता—नमस्कार, प्राणपति !

राम—आनन्द रहो सती ! आहा !

यौवन ज्योति जगामग होत श्रृंगार प्रभा सरसावत है ।
रीझ रहीं अखियां अब रामकी मोद हिये भर आवत है ॥
सोहित है बिन्दिया इस भाल विशाल पे वह छबि छावत है ।
जैसे आकाशकी, चन्द्र प्रकाशसे चान्दनी शोभा बढ़ावत है ॥

सीता—हृदयेश्वर !

मेरी दुनियाके अचल सूरज हो ज्योती मान हो ।
मेरे जीवनकी खुशी हो जानकीके प्राण हो ॥
आपके मिलनेसे ही मिलता है सुख आरामको ।
ता योंआँखें थीं खुली पर ढूढ़ती थीं रामको ॥

राम—(प्रेमसे आलिंगन करते हुये) सत्य है, पतिव्रता स्त्री धर्म, सुख और सम्पतिका अनन्त स्रोत है। पतिव्रता स्त्री स्वर्गद्वारकी अटल जोत है। पतिव्रता स्त्री उपदेश देनेमें गुरु; विपत्ति कालमें माता और जीवनका महा बन पार करनेमें विश्रामका मनोहर स्थान है।

सीता—स्वामिन ! मैं आपको प्रणाम करती हूं।

राम—सीते ! इस समय तुम्हारे मुख मण्डलकी सुहावनी छटा जो दामिनी धाराकी तरह चमक रही है देखकर मेरा मयूर मन मुग्ध हुआ। मुझसे कुछ वर मांगो। जो इच्छा हो सहर्ष मांगो।

सीता—वर ? प्राणेश ! वर ?

प्रेम जलसे पूर हूं जीवन लता सूखी नहीं।
हूं पती दर्शनकी भूखी, वरकी मैं भूखी नहीं॥
हां अगर देना हो तो दें वर यही वरदानमें।
जानकीके प्राण निकलें रामके ही ध्यानमें॥

राम—सौभाग्य ! सौभाग्य !!

तार देती है सती नारी पलकमें निज पतीको।
राम क्या है ? सिर झुकावें ब्रह्मा विष्णु शिव सतीको॥
सती महिमाकी बड़ाई शास्त्रके हर श्लोकमें है।
स्वर्ग सुख है रामको सीता जो मृत्यू लोकमें है॥

.........(अकस्मात रावणके चित्रको देखकर तेवर बदलना)

सीता—नाथ ! नाथ ! आप...

राम—हैं चित्र ! किसका चित्र ? रावणका चित्र ! कर्मगति ! कर्मगति !

सीता—नाथ! क्या मैंने विचार, वचन या कर्म द्वारा स्त्री धर्म-
का उलंघन किया जो हँसते हुये पूर्णेन्दुसे श्रीमुखारविन्द-
को मेरी ओरसे फेर लिया?

राम—मनसे पूछो!

सीता—मनके स्वामी तो आप हैं।

राम—था, किन्तु अब नहीं।

सीता—"था, किन्तु अब नहीं"! कारण?

राम—कर्मगति।

सीता—किन्तु कोई प्रत्यक्ष प्रमाण?

राम—देख, देख इस चित्रका अनुमान। यही प्रत्यक्ष प्रमाण।

सीता—चित्र? क्या यह चित्र? उँह यह चित्र तो मैंने बहिन
उर्मिलाको दिखानेके लिये बनाया था।

राम—क्या तेरी अपवित्र आंखोंने रावणकी सूरतको देखा जो
इस समय तक स्मरण शक्ति द्वारा चित्र बनानेमें काम
आया?

सीता—हां प्रभू! देखा, अवश्य देखा।

राम—हैं देखा? किन्तु कब देखा? कैसे देखा? कहां देखा?

सीता—पंचवटीमें भिखारीके रूपमें देखा, अशोक वाटिकामें
कालके रूपमें देखा और चितापर राखके रूपमें देखा।

राम—(आह भरकर) सीता! सीता!! (जाना चाहना)

सीता—नाथ! नाथ!! (रामका चले जाना) आह गये, तनके
प्राण गये। यह चित्र अवश्य मुझे कुछ विचित्र दुर्घटना

दिखायेगा। (चित्रके समीप जाकर) दूर हो, नाश हो जा, ओ शत्रु के चित्र! मिट जा (चित्रको मिटाना) यश और मानका शत्रु, शरीर और प्राणका शत्रु, ओ निर्दई; निष्ठुर, निर्मम! आखिर तूने मरकर भी चित्रके रूपमें मुझसे बदला लिया। ओ विधाता! ओ विधाता!! (गिर पड़ती है)
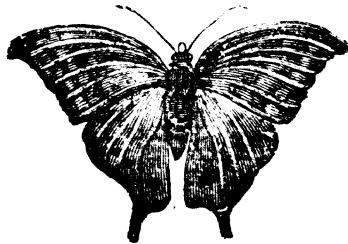
पाचवां दृश्य ।

स्थान-- जंगल ।

[रामधन लकड़हारेका गाते हुये प्रवेश]

[गाना]

राम बिन कोई मित्र नहिं तेरा ।
यह जग स्वारथ हीका साथी, है परिवार घनेरा ।
फांस लेत ममता जुल देकर, कहकर मेरा मेरा ॥
छल बल फूल भूल सब जावें, काल करे जब फेरा ।
यह संसार रैनका सपना, पक्षी पथिक बसेरा ॥
भोर होत इत उत उड़ जावे, दिये लेत नहीं डेरा ।
राम राम कह राम राम तू, अब तो चेत सवेरा ॥

[शूर्पनखाका आंधीके रूपमें प्रवेश करना]

शूर्पनखा—बैर ! बैर ! मेरे जीवनका प्रतिश्वास तेरी दया पर निर्भर है। बैर ! तेरे सिवा दुनिया उदास है। बैर ! मेरे दुखोंकी दवा तेरे पास है। किन्तु फिर भी तू मुझ अनाथ अबलापर दया नहीं दिखाता। ओ विधाता ! यदि मुझे बैर शक्ति न देनी थी तो फिर किस लिये मुझे कुरूपा बनाया ? किस लये भाई खर और दूषणको परलोक पहुँचाया ? किस हेतु रावणसे योधा, कुम्भकरणसे बलि और इन्द्रजीतसे वीर धनुषधारीका नाम

मात्र मिटाया ? आह ! अब संसारमें मेरे लिये क्या रखा है ? कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं हूं और दुख। दुख है और वैर। वैर है और राम। राम ! ओ बनबासी राम ! क्या करूं कुछ वश नहीं चलता।

बिछाई वैरकी चौसर मगर हरबार शैह खाई।
खिलाड़ी मर गये लाखों मगर ज़िन्दा है रघुराई॥
मैं मृत्यु बनके जपती हूं तेरी आयुके दानेको।
मैं वह दाने बिखरते अब दिखाऊंगी ज़मानेको॥

रामधन—न करो, वृथा क्रोध न करो, क्योंकि क्रोधाग्नि बुद्धिकी शान्तमयी सृष्टिको जलाकर भस्मकर देती है।

शूर्प०—तू कौन ?

राम०—दुखभरी काया।

शूर्प०—मुझे समझानेसे तुझे क्या मिलेगा ?

राम०—आत्मिक सुख।

शूर्प०—जा जा टुकड़ गदे ! यदि भूखने व्याकुल किया हो तो नगरीमें जा, मेरा सिर न फिरा।

राम०—देवी ! मुझसे इतनी घृणा ?

शूर्प०—क्योंकि तू अज्ञानी है।

राम०—होगा, किन्तु क्रोध गढ़ेमें गिरनेवाले अंधेको शान्ति मार्गपर लाना धर्म शास्त्रकी बाणी है।

शूर्प—क्या मैं अंधी हूं ?

राम०—निश्चय। क्योंकि जब क्रोधका मुँह खुलता है आंखे बन्द हो जाती हैं।

शूर्प०—तो क्या शत्रुको दण्ड न दिया जाय? उससे बैर न लिया जाय?

राम०—हरगिज़ नहीं, जिस मनुष्यके हृदयमें शत्रुके लिये क्षमाका दान है वही मनुष्य सच्चा विचारशील और बुद्धिमान है।

> क्षमा बड़ोंका काम है, छोटोंका उत्पात।
> विष्णूका क्या घट गया, जब भृगु मारी लात॥

शूर्प०—किन्तु मेरा शत्रु, आह! मेरा शत्रु इस योग्य नहीं जो उसे क्षमादान दिया जाय।

राम०—तुम्हारे शत्रुका नाम?

शूर्प०—राम, राम, बनवासी राम।

राम०—क्या वह राम,—

> जो कौशल्याका बेटा जानकीका प्राण प्यारा है।
> जिन्होंने भक्त हेतु जगतमें अवतार धारा है॥

बताओ, बताओ, क्या वही राम? वही मनोभिराम?

शूर्प०—हैं जहां देखो हर जिह्वापर मेरे शत्रुका नाम, उसीकी माला है। क्या उस जादूगरने सर्व ब्रह्माण्डपर वशीकरण मन्त्र डाला है। तो सही,—

> रामके ही नामकी सूरत बदल डालूंगी मैं।
> 'राम' को पलटा खिला फिर 'मार' कर खा लूंगी मैं॥

(जाना)

राम०—गई, धर्मकी बैरन—अर्थकी डाकिन—कामकी सौतन

और मोक्षकी दुश्मन गई। राम! प्रिये राम! सुना है कि तू ही दीनोंका प्रतिपाला है, तू ही भूखोंको खिलाने वाला है, किन्तु मैं जितना तेरे नामकी रट लगाता हूं उतना ही दुर्भिक्षके हाथों दुख उठाता हूं। आज भी कहीं लकड़ी न मिली जिसे बेच बाचकर बच्चोंके लिये कुछ खानेको ले जाता। ओ विधाता! क्या मुट्ठी भर अन्नके लिये मेरे, मेरी पत्नीके, मेरे मासूम बच्चोंके प्राण लेना चाहता है? ले, ले, ओ निर्दई! शीघ्र ले। (सामने देखकर) हैं क्या काला नाग? भाग, रामधन! भाग (सांपका डंक मारना, रामधनका गिर पड़ना) आह मुआ, मुझे सांपने डस लिया। आह! मेरे अनाथ बच्चे, गरीब स्त्री—पानी—पानी।

शूर्प०—(दूसरे वेशमें प्रवेशकर) बच्चा! तुझे क्या हुआ?

राम०—मुझे सर्पने डस लिया।

शूर्प०—बच्चा! न घबरा, मैं तुझे जीवन दान दे सकती हूं किन्तु एक शर्तपर।

राम०—कहो, कहो, ऐ बनकी देवी! शीघ्र कहो कि तुम्हारी क्या शर्त है?

शूर्प०—आह क्या कहूं संसारमें मेरा कोई नहीं रहा, इस लिये तुझे मेरा धर्म पुत्र बनना होगा।

राम०—हर्षसे।

शूर्प०—तो फिर शपथ खाओ।

सरोवरमें
तेजस्वी रू
जैसे बदली,
तैसे इन लो
काहे प्यारी !
दीदी ! इन हो
[सीताके ऋ
दीदी ! अ
दल है ।
तुम्हारे रह
सीता—रहस्य ?
उर्मिला—तो फिर
सीता—नहीं, नह
भरना) सु
कल स्वप्न
जिनकी प्र
तजकर वह
उस घोर
उर्मिला—समझ
कि गर्भव
दिखाते
वास्त
स्वप्न

राम०—किसकी ?

शूर्प०—जो तुझे सबसे प्यारा है ।

राम०—सबसे प्यारा तो मुझे कौशल्याका दुलारा है, सीता पति रामचन्द्र मेरा प्राणाधारा है ।

शूर्प०—आह मेरा शत्रु ! अस्तु—फिर उसीकी शपथ खा, मुझे विश्वास दिला ।

राम०—मैं रामकी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आजसे जीवन पर्यन्त तुम्हारा पुत्र बनकर पुत्र-कर्त्तव्यका पालन करूंगा ।

शूर्प०—बस अब फंस गया । उठ अपनी धर्म माताको देख ।

राम०—कौन ? कौन ? धर्मकी वैरन ? रामको दुश्मन ?

शूर्प०—नहीं नहीं तुम्हारी धर्म माता ?

राम०—आह धोका, धोका, क्या मैं इस राक्षसीका पुत्र बनूं ? अमृतको छोड़कर विषपान करूं ? नहीं, नहीं-

रामसे आराम दिलको रामका सच्चा है नाम ।
रामका शत्रु बनूं कैसे बनेगा ? राम ! राम ॥
छोड़ दूं उस रामको जीवनका जो आधार है ।
रामको छोड़ूं यदि तो मुझपे सौ धिक्कार है ॥

शूर्प०—मुर्ख ! क्यों जीवन सुख हाथसे गँवाता है ।

राम०—धर्म पर निछावर होने वाला परम धाम पाता है ।

शूर्प०—किन्तु मनुष्य जीवनका बार बार मिलना दुश्वार है ।

राम०—आह ! मनुष्य जीवन क्या है ? दुख सुखका आव

है। जब तक दम चलता है तब तक ही मोह और प्यार है।

मात पिता नारी सुत बान्धव, लागत हैं सबको अति प्यारो।
लोग कुटम्ब सभी हितराखत होत नहीं हमसे कोइ न्यारो॥
देह स्नेह तभी तक जानो बोलत हैं मुख शब्द उचारो।
जा दिन प्राण पखेरू उड़ा तब वेग कहैं घर मांहि निकारो॥

शूर्प०—तो क्या अपनी प्रतिज्ञाको न निभायेगा?

राम०—आह प्रतिज्ञा! प्रतिज्ञा!! निभाऊंगा, जीवन पर्यन्त निभाऊंगा। जिस प्रकार प्रतिज्ञाके लिये राजा बलिने अपना शरीर माप दिया; राजा मोरध्वजने अपने पुत्रको आरेसे चीर डाला; दशरथने रामको चौदह वर्षका बन-वास दिया, उसी प्रकार मैं भी आज अपनी प्रतिज्ञाको तुम्हारा पुत्र बनकर, आह! राक्षसीका पुत्र बनकर, निभाऊंगा।

मुझे अपनी प्रतिज्ञा प्राणसे प्यारी है दुनियामें।
प्रतिज्ञासे ही भारत भूमि उजियारी है दुनियामें॥
प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये दुनियामें आया हूं।
नहीं मालूम मैं भी तो इसी भारतका जाया हूं॥

बता, बता राक्षसी माँ! मेरे लिये क्या आज्ञा है?

शूर्प०—वालमीकिके आश्रममें जा और रघुवंशकी भविष्य शोभाको—रामकी हृदय आभाको—सदैवके लिये मानव जातिसे मिटा।

रामधन—धर्म माता! जो आज्ञा,—

सरोवरमें इ
तेजस्वी रूप
जैसे बदली, ब
तैसे इन लो
काहे प्यारी !
दीदी ! इन हो
[सीताके अ

दीदी ! अ
दल है ।
तुम्हारे रह
सीता—रहस्य ?
उर्मिला—तो फि
सीता—नहीं, न
भरना) इ
कल स्वप
जिनकी प्र
तजकर व
उस घोर
उर्मिला—समभ
कि गर्भ
दिखाते
वार
स्व

यद्यपी निस दिन जलूंगा ईर्ष्याकी आगमें ।
तो भी मेरा मन रहेगा रामके अनुरागमें ॥
जिस तरह लंका पती बैरी बना था रामका ।
वैर करनेसे मिला आसन उसे सुख धामका ॥
उस तरह मैं भी करूंगा वर श्री रघुवीर से ।
मुक्ति जल पीने को जाता हूं मैं उनके तीरसें ॥

(जाना)

शूर्प०—कल्याण हः हः हः अयुष्मान ।

छटा दृश्य।

स्थान—अयुध्याकी एक गली।

[पहले कुबुद्धि प्रवेश करती है, उसके पीछे 'कर्म' आता है]

कुबुद्धि—सुनो लोगो! सुनो, थूहरके पेड़पर कोयल कूहक रही है।

कर्म—जो तुम्हारे मुंहपर थूक रही है। क्यों न हो, आखिर श्रीमती कुबुद्धि हो न। दर्शनके योग्य है इस अमंगल मूर्त्तिकी छाया। "थूहरके पेड़पर कोयर" अच्छा प्रकृति-के विरुद्ध सुनाया। क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया?

कुबुद्धि—रहने भी दे, अपनी प्रकृतिको। केवल मेरे स्वरमें स्वर मिला। नहीं तो तेरे अक्कके सारे पुरज़े ढीले कर दूंगी।

कर्म—श्रीमतीजी! आज किसने लंका काण्ड पढ़ाया जो आते ही ऐसा भयंकर प्रस्ताव सुनाया? क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया?

कुबुद्धि—भूतोंने, पिशाचोंने, बैतालोंने और सबसे अधिक तेरे जैसे लहराते हुये कालोंने।

कर्म—वाह! सभ्यताके जलसे मुझे अच्छा स्नान कराया, मेरे शरीरको पवित्र बनाया। भर पाया, बाबा! भर पाया। क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया?—अस्तु। कुबुद्धिजी! यहां आनेका कारण तो अवश्य जानती होगी?

कुबुद्धि—हां हां, मुझे अपने साथ नचानेके लिये—कोई नया दृश्य दिखानेके लिये।

कर्म—बिलकुल ठीक सुनाया, जैसा चाहता था उससे अधिक पाया। तो फिर जा और धोबनियाका बहरूप भरकर जल्दी आ।

कुबुद्धि—बहुत अच्छा। (जाना)

कर्म—गई, मूर्खकी जाई, पागलकी माई गई —स्वरूप भरने गई। वाह! मैंने भी अच्छा स्वांग बनाया। क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया?

[गाना]

कहीं जोगी और कहीं भोगी, कहीं रोगी बनकर आता हूं।
कहीं चोरी सीना जोरीसे औरोंका माल उड़ाता हूं॥
कहीं चेला और कहीं परोहित, कहीं धोबी रूप बनाता हूं।
जो भावीकी आज्ञा होवे मैं वह ही खेल रचाता हूं॥

[रामधन लकड़हारेका प्रवेश]

रामधन—राम राज्यकी क्षय हो, राम राज्यकी क्षय हो।

कर्म—और तेरी जय हो। ओ भाई वंजारे; राम राज्यके द्रोही मेरे प्यारे!

रामधन—(चौंक कर) हैं "मेरे प्यारे"?

कर्म—हां।

रामधन—वह कैसे?

कर्म—वह ऐसे कि जो चीज़ तुम बेच रहे हो मैं उसका खरीदार हूं।

रामधन—तो मैं तुम पर—तुम्हारे स्वर्गीय पितामहा पर—इस तरह बलिहार हूं जिस तरह बनिया सूदकी रफतार पर, कंजूस रुपयोंकी झंकार पर, गधा झूल पर और भँवरा कंवल फूल पर।

कर्म—तो फिर वही मधुर ध्वनि सुनाओ, मित्रवर! वही ध्वनि सुनाओ।

रामधन—तो फिर आओ, बिना सांस लिये मेरे साथ मिल जाओ।

कर्म—किन्तु पहले मुट्ठी तो गर्माओ।

रामधन—(थैली देते हुये) लो इसका तो डकार लगाओ और मूंहकी बत्तीसीमें रहनेवाली जिह्वाकी बागें ढीली छोड़ कर मेरे पीछे पीछे दौड़ाओ।

कुबुद्धि—(प्रवेश कर कर्मसे) कहो, बहरूप पसन्द आया?

कर्म—भाया। क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया? (कुबुद्धिको कोड़ा मार कर) सच सच बता कलंकिनी! कहां थी? नहीं तो आज मैं भी पवन पुत्र बनकर तेरी जीवन वाटिकाको अशोक वाटिकाकी तरह उजाड़ दूंगा। हरामज़ादी! तूने मुझे बहुत सताया। क्यों कुछ आप—

कुबुद्धि—अरे लोगो! दौड़ो, बचाओ। मुआ घातकी मुझ निरापराधनके प्राण लेना चाहता है।

१४

सरोवरमें कु
तेजस्वी रूप
जैसे बदली, ब
तैसे इन लोच
काहे प्यारी !
दीदी ! इन होठ
[सीताके आ
इ
दीदी ! अ
दल है ।
तुम्हारे रह
सीता—रहस्य ?
उर्मिला—तो फिर
सीता—नहीं, नह
भरना) सु
कल स्वप
जिनकी प्र
तजकर वह
उस घोर
उर्मिला—समभ
कि गर्भ
दिखाते
वार
स्व

कर्म—अरी क्यों शोर मचाती है—मुहल्ले भरको सिर पर उठाती है ? मैंने तुझे बड़ी मुश्कलसे पाया—तुझे अपने हत्थे चढ़ाया। क्यों कुछ आप—

दुर्मुख—(साधुके भेसमें आकर) हैं ! यह कैसा कोलाहल ! क्यों क्या है सती !

कर्म—(देखकर) कौन ? दुर्मुख गुप्तचर। वाह अच्छे मौके पर आया। हैं जैसी सीता सती वैसी यह भी सती।

दुर्मुख—हैं यह मैंने क्या सुना ?

कुबुद्धि—(मार खाते हुए) देखो, देखो, साईं बाबा ! देखो। मुआ हाथ नहीं रोकता।

रामधन—देखो भाई ! यदि तुम्हें इस घोटालेमें रहना हो, इसी गड़बड़ झालेमें रहना हो, तो मेरी थैली वापिस लाओ वरनः मेरे साथ "रामराज्यकी क्षय हो, रामराज्यकी क्षय हो" ज़ोर ज़ोरसे चिल्लाओ।

कर्म—मेरा सिर न फिराओ, मुझे जरूरत नहीं (मारते हुए) हां हां ले तोड़ा, ले तोड़ा। भाई साहब ! बड़ी मुश्कलसे यह अवसर हाथ आया। क्यों देखा कैसा अच्छा भूत-नाच सिखाया।

रामधन—विचित्र मनुष्यसे पड़ा पाला।

कुबुद्धि—उई उई मैं मर गई, मुए ने मार डाला।

दुर्मुख—आह रामराज्यमें ऐसा अत्याचार ! ठहरो, ठहरो, इस बिचारी अबलाको मारनेका तुम्हें क्या अधिकार है ?

कर्म—क्या तू थानेदार है ?

दुर्मुख—क्या इतना बताना भी तुम्हें अस्वीकार है ?

कर्म—हरगिज़ नहीं।

दुर्मुख—तो फिर बता दो।

कर्म—इसका पति।

कुबुद्धि—झूट, लाल झूट, यह मेरा पति–वति नहीं।

दुर्मुख—तो फिर तुम कौन हो ?

कर्म—कम्मू धोबी।

रामधन—भाई कम्मू धोबी ! तुम्हारी यह हरकत तो मुझे मन्ज़ूर नहीं।

कर्म—(फिर मारते हुए) तो फिर रास्ता भी दूर नहीं।

दुर्मुख—थम जाओ, कम्मू धोबी ! थम जाओ, स्त्रीको मारना महा पाप है।

कर्म—महाराज ! यह स्त्री नहीं।

दुर्मुख—तो फिर क्या है ?

कर्म—जीका सन्ताप, ब्राह्मणका श्राप, चौथेका ताप बनकर मेरे हृदय मन्दिरको छाया। साधू महाराज ! क्यों कुछ आप.........

दुर्मुख—वह क्यों ?

कर्म—वह यों कि एक तो मुझसे अलग रहकर रातभर अकेली मौजें उड़ाती है, जब पूछो कि कहां थी तो मुझे आंखें दिखाती है। ठहर तो सही हरामज़ादी ! आज तो अव-

श्य मैं तेरी नाकका करूंगा सफ़ाया। क्यों कुछ...... ।
हां, यहां राम नहीं जो मुझपर तुम्हारा त्रिया मन्त्र चल जायगा। जैसे वह रावणके घरसे सीताको वापिस ले आये थे, मैं नहीं वैसा करनेका। यह दूसरी बात है कि,—

वह पुरुषोत्तम मैं धोबी हूं पर आन पे अपनी मरता हूं।
जो रात रही बाहर मै उसको दिलसे बाहर करता हूं॥

दुर्मुख—(स्वतः) हैं यह क्या कह गया "जो रात रही बाहर मैं उसको दिलसे बाहर करता हूं।"

रामधन—(उछलकर) सौभाग्य ! सौभाग्य ! भई कम्मू धोबी ! आजसे तू गुरु मैं चेला। लो मैंने तुम्हारे आगे सिर झुकाया।

सीत
उर्मि
सीत

कर्म—नहीं नहीं सिर झुकानेकी ज़रूरत नहीं, मैंने तो केवल अपना धर्म निभाया। क्यों कुछ........... ?

दुर्मुख—"दिलसे बाहर करता हूं—वह पुरुषोत्तम मैं धोबी हूं पर आन पे अपनी मरता हूं" क्या राजराणी सीता महाराणीका पतिव्रत धर्म अखण्ड नहीं ? हरे हरे, यह सब मिथ्यावाद है। अवश्य किसी गुप्त शत्रुका फसाद है।

उर्मि

कर्म—चल गया, मन्त्र चल गया। क्यों थैली वसूल हुई कि नहीं। कैसा उल्लू बनाया ! क्यों कुछ ध्यानमें आया ?

रामधन—उससे भी अधिक। वाह अमृतमें अच्छा ज़हर मिलाया। क्यों श्रीमती जी ! कुछ ध्यानमें आया ?

कुबुद्धि—वाह मुफ्तमें मार मारकर कचूमर बनाया।

कर्म—अरी श्रीमती! हम दोनोंने अपना कर्त्तव्य निभाया।
ले यह मार खानेका इवज़ाना, मेरी महामाया!

[कुबुद्धिका जाना]

आवाज़—(नैपथ्यमें) पकड़ो जाने न पाये। लूट खाई, सबकी सब लूट खाई। (चन्द लड़कोंका आना)

कर्म—क्यों क्या है भाई?

बालक—एक उठाईगीरने हलवाईकी मिठाई लूट खाई।

रामधन—बर आई, बहुत दिनोंकी मुराद बर आई।

कर्म—वह कैसे?

रामधन—बस बस कम्मू धोबी! तुम अपनी कायामें रहो, मेरी छायामें रहो।

कर्म—बहुत बेहतर, काया और छाया। क्यों कुछ...... ?

रामधन—(बालकोंसे) ओ अन्धेर नगरीके बालको! यदि यह चान्दीका टुकड़ा खाना चाहते हो तो जैसे अंधा कुत्ता हवाको भौंकता है वैसे ही तुम भौंको, ऊंची सुरोंमें हांक लगाओ!

कर्म—हां समझा। तुम सब एक कतारमें खड़े हो जाओ।

बालक १—किन्तु कहें क्या; कुछ यह भी तो बताओ।

रामधन—बरसाती मैंडकोंकी तरह टर्राओ, कम्मू धोबीके गधे-की तरह अपने मुखमण्डलको यों करके मगज़चट राग सुनाओ। 'हूं हांक' 'हूं हांक' की तान लगाओ।

बालक १—तो पहले तुम ही सबको नमूना दिखाओ।

रामधन—(भाव दिखाते हुये) इधर देखो। सुनो, "राम राज्यकी क्षय हो" हर एक कानतक इस आवाज़को पहुँचाओ।

सब बालक—क्या ? क्या ?

रामधन—राम राज्यकी क्षय हो।

बालक १—'रामराज्यकी क्षय हो' बहुत बेहतर श्रीमान ! तो फिर दिलाओ जो देते हो।

कर्म—हां ठीक, बिल्कुल ठीक। पहले दाम फिर काम क्योंकि चारों वेद, षट शास्त्र और अठारह पुराणने तो यह जीवनका सारांश बताया। क्यों कुछ आप...... ?

सीता

रामधन—हां हां हर्षसे लो (हर एकको एक एक सीतारामी देना)

उर्मिल

बालक १—(दूसरे बालकोंसे) इस एक एक सीतारामीका तो डकार लगाओ और जो कुछ मैं कहूं उसे दुहराओ तैयार, बोलो "राम राज्यकी...........

सीता

सब—जय हो"

रामधन—ओ आकाशके टूटे हुए नक्षत्रो ! यह क्या ?

बालक १—जो कुछ तूने हमें सिखाया।

कर्म—बिचारे रामधनने खूब चकमा खाया। क्यों कुछ आप..

उर्मिल

रामधन—ओ सुग्रीवके बच्चो ! जामवन्तके पोतो !! मैंने राम राज्यके साथ 'जय' का शब्द कब लगाया ? मैंने तो तुम्हें 'जय' के बदले 'क्षय' का सबक पढ़ाया। कहो कहो सोचकर कहो, "राम राज्यकी क्षय हो"।

सब बालक—उहूं ।

रामधन—उहूं ? तो फिर लाओ मेरा चान्दीका टुकड़ा ।

बालक १—उसका तो हमने बाल भोग लगाया ।

कर्म—यह अच्छा फ़िकरा सुनाया । बालकोंसे तो स्वयम यम राज भी घबराया । फिर यह तो मनुष्यका है जाया—क्यों कुछ आप............

रामधन—हां हां यह बात है ।

कर्म—क्या देखते हो, इस रामद्रोहीको मेरे गधेपर चढ़ाओ, काला मुँह करके अयुध्याके कोने कोनेकी सैर कराओ । फिर पत्थरोंसे इसके सिरका स्वागत मनाओ ।

बालक १—तो फिर तुम भी हमारा हाथ बटाओ, कहींसे गधा ले आओ ।

कर्म—गधा हाज़र है । लो इसे इसपर चढ़ाओ ।

(लड़कोंका रामधनको पकड़कर गधेपर चढ़ाना)

रामधन—दुहाई ! शूर्पनखाकी दुहाई ! आओ माई ! शीघ्र आओ मुझे इन रामभक्तोंसे बचाओ । (कर्मसे) तुम्ही मुझपर तरस खाओ ।

कर्म—उहूं । भावी माताने मुझे यही सिखाया ।

रामधन—और जो कुछ तुम्हारे जीमें आये करो किन्तु मुझे इस जीते जागते टांगोंवाले अपमानपर न चढ़ाओ ।

कर्म—चढ़ जाओ, चढ़ जाओ बच्चा ! रामका नाम लेकर गधे पर चढ़ जाओ । मारे जाओगे, यदि भावीकी आज्ञासे

मुंह फिराया। क्यों कुछ आपकी समझमें आया।

चढ़ाओ, चढ़ाओ।

(बालकोंका रामधनको गधेपर चढ़ाकर मारते हुये ले जाना। कर्मका)

[गाना]

यह दुनिया कर्म की खेती है वही काटेगा जो बोता है।
यां सौदा दस्त-बदस्ती है फिर काहे को तू रोता है॥
माता के गर्भ में आने से पुनपाप की हुण्डी मिलती है।
फिर जीवन में सब चुकता है जो लेना देना होता है॥
धोने से नहीं मिटता 'शैदा' किस्मत का लिक्खा दुनिया में।
फिर काहे झूटी चालों के साबुन से मल मल धोता है॥

सीता
उर्मिल
सीता

उर्मिल

सातवां दृश्य ।

स्थान—राजभवन ।

राम—(प्रवेशकर) दुर्मुख ! दुर्मुख !! तेरी जिह्वासे निकले हुये भूकम्पके समान हृदय-विदीर्ण शब्दोंने हिमालयसे अधिक स्थिर हृदयको जड़से उखेड़ चूर्ण विचूर्ण कर दिया। सुना, सुना, एक बार फिर वही मृत्युवश ध्वनि सुना ।

दुर्मुख—म—म—म—महाराज...

राम—चुप चुप दुर्मती ! दुर्मूर्ति ! दुर्मुख ! चुप । तू नहीं जानता कि वह कौन है और तू कौन है ।

दुर्मुख—सूर्यकुल तिलकधारी ! मैं अच्छी तरह जानता हूं ।

राम--क्या ? क्या ?

दुर्मुख--यही कि वह महारानी होनेपर स्त्री जातिकी मुकुटमणि हैं और मैं एक साधारण मनुष्य होनेपर रामका अनुचर। किन्तु जो कुछ मैंने आपके श्रीचरणोंमें निवेदन किया है वह केवल आपकी आज्ञाका पालन करना है ।

राम--मेरी आज्ञाका पालन ? सत्य है । निःसन्देह तूने मेरी आज्ञाका पालन किया । तूने अपने कर्तव्यका पालन किया इसलिये तू धर्मात्मा है और मैं मूर्खात्मा । यह मेरी आज्ञा है कि तू नितप्रति प्रजाके आचार-व्यवहारका, मेरे न्याय, मेरे शासनके विषयमें की हुई मिथ्या निन्दा आदिकी मुझे सूचना दे । दुर्मुख ! तू निर्दोष है, निर-

पराध है। मैंने तेरे कर्तव्यका अपमान किया। मैं अपराधी हूं। मुझे क्षमा करना।

दुर्मुख—क्षमा? क्षमा? स्वामी—और फिर राम जैसा स्वामी मुझ तुच्छ सेवकसे क्षमा मांगे? आह! ऐसा उत्तम आचार! धन्य हो राम! धन्य हो।

राम—दुर्मुख! मुझे धन्य मत कह। मुझे धिक्कार दे धिक्कार!

दुर्मुख—मर्य्यादा पुरुषोतमको धिक्कार? पवित्र आचारको धिक्कार?

राम—हां हां क्योंकि मेरा आचार-व्यवहार प्रजा दृष्टिमें निन्दित हो गया और निन्दित आत्माका संसारमें रहना न रहना एक समान है। प्रजाने रामसे आंखें फेर लीं। प्रजाने रामको अपने हृदय-सिंहासनसे गिरा दिया। आह प्रजा—मेरी प्रजा! मेरी प्रजा? आह! क्या प्रजाको पुत्र समान पालन करनेका यही प्रतिदान है? क्या प्रजा उन्नति, प्रजा स्नेहको, जीवनादर्श, जीवनकर्तव्य बनानेका यही प्रतिदान है? प्रजा इच्छाको स्वयम ईश्वरकी इच्छा समझनेका यही प्रतिदान है?

दुर्मुख—आह! मैंने रामके सुकोमल हृदयको वृथा दुख पहुंचाया जो ऐसा हृदय विदारक समाचार सुनाया।

राम—नहीं, नहीं, तूने अपना कर्त्तव्य निभाया। किन्तु मानव जाति इतनी कृतघ्न, इतनी ओच्छी और इतनी स्वार्थी है कि जितना उसे अपना बनाओ उतना ही वह परे हटती

है। अयुध्यावासियो! क्या तुम मेरी प्राणेश्वरी पुन्यमई सीताको, पतिव्रता सीताको, राज्य लक्ष्मी सीताको, राम के हृदयसे अलग करना चाहते हो—इसलिये कि सीता अलक्ष्मी है, सीता अ—सती है। भूल करते हो, भूल करते हो। क्या तुम रामसे बढ़कर सीताके चरित्रको जानते हो? याद रखो, याद रखो, सीता सती हो या असती, पवित्र हो या अपवित्र, वह मेरी है, वह मेरी है।

प्रभा बनकर रमी है रोएँ रोएँ और रग रग में;
असम्भव है अलग करना सियाको रामसे जग में।
वह मेरी आत्म-सृष्टी है मैं उस सृष्टीका बासी हूँ;
उसे अभिलाष है मेरी, मैं उसका अभिलाषी हूँ।

दुर्मुख—आह! विधाता ऐसा ही करे। विधाता ऐसा ही करे।

राम—"विधाता ऐसा ही करे"? पापी, घृणतात्मा, क्या तू अबतक यहीं है? दूर हो, दूर हो, मेरी सीताके स्तीत्व-चन्द्रमाकी शोभाको घटाने वाले कलंक कालिमा! दूर हो। रघुकुल-चन्दन-वृक्षसे सुगन्ध लेकर विष उगलने वाले काले सांप! दूर हो। हैं! यह मैंने क्या कहा? क्या मैंने फिर तेरा अपमान किया? नहीं, नहीं तू निर्दोष है—तूने जो कुछ सुना वही कह दिया। दुर्मुख! तूने ऐसी सच्ची बात क्यों कही? मुझसे झूठ क्यों न कहा? अयुध्याका सिंहासन, यह राज्य मुकुट, मुझसे ले ले। केवल इतना कह दे—कि जो कुछ तूने कहा वह बिलकुल झूठ है।

प्रकाश रहेगा तब तक सीताकी पवित्र मूर्ति रामके हृद यस्थलपर क्रीड़ा करेगी।

जैसे तैसे का दीं

कर्म०—(वशिष्ठके भेषमें प्रवेशकर) अवश्य करेगी।

राम—कौन गुरु वशिष्ठ? बचा लो, गुरुदेव! मुझे इस व्यथाग्निसे बचा लो वर्ना तुम्हारा राम दम भरमें जल कर भस्म हो जायगा।

कर्म—राम! कर्त्तव्य पालनके लिये दृढ़ साहसकी ज़रूरत है कर्त्तव्य पालनके लिये आत्मिक बलकी ज़रूरत है।

राम—मैं वह सब खो चुका। मेरे पास सिवाय प्राणके औ कुछ नहीं है। साहस, बल, बुद्धि सब खो चुका।

सीता-

कर्म—तो क्या कर्त्तव्य क्षेत्रसे भागना चाहते हो?

उर्मिला

राम—हरगिज़ नहीं। आप आज्ञा कीजिये, कर्त्तव्य पालनके लिये राम प्राण आहुति देनेको तैयार हैं। प्रभू! ले लीजिये, इस प्राणको भी ले लीजिये ताकि राम शून्यत का प्रतिरूप बनकर संसारमें रहे। किन्तु गुरुदेव! निर पराधिनी सीताको किस दोषसे त्याग दूं?

सीता-

कर्म—नलने कौनसा अपराध किया जिससे उसको रितुपर्णक सारथी होना पड़ा? हरिश्चन्द्रने कौनसा अपराध किय जिससे उसे चाण्डालका दास होना पड़ा? स्वयम् तुमने कौनसा अपराध किया जिससे तुम्हें बनबासी होन पड़ा? पुत्रकी दुख—बीमारीसे पीड़त होकर बूढ़ा पित किस अपराधसे यंत्रणा सहता है? राज्य भवनमें रहं

उर्मिल

वाले कुत्ते स्वादिष्ट अन्न खाकर पलते हैं किन्तु अंधे, पिङ्गले, मनुष्य भोजन न मिलनेपर किस अपराधसे रास्तेमें बिलख बिलखकर मरते हैं ?

— गुरुदेव ! मैं कुछ नहीं समझा, मैं कुछ नहीं समझा ।

—राम ! मनको वशमें रखो, फिर समझनेका प्रयत्न करो । मैं तुम्हें समझाता हूं । सुनो ! राजा समाजकी रक्षित सम्पति है । राजापर समाजका अधिकार है । इसलिये तुमको समाजके चरणोंमें अपनी सर्व इच्छायें, धन-दौलत, सुख-सौभाग्यका बलिदान देना होगा । अपराध है या नहीं इसके विचार करनेकी ज़रूरत नहीं ।

-"विचार करनेकी ज़रूरत नहीं"—वह किस लिये ?

—वह इस लिये कि स्वर्ग और नरक, पुण्य और पाप, विधाताकी सृष्टि नहीं अपने कर्मोंका फल है—और अपराध—'अपराध' शब्दकी उत्पत्ति मनु ऋषिने केवल संसारी मनुष्योंको डरानेके लिये की थी । इससे घृणा करो, यह अपराधी है; इसने घोर अपराध किया है, इस को दण्ड दो । समाज कहता है मनुष्य-हत्या पाप है किन्तु संग्राममें जो हजारों हत्यायें होती हैं उन्हें कौन पाप कहता है ।

-तो फिर पाप और पुन्य कुछ नहीं ?

-कुछ नहीं । यदि तुम साँपसे पूछो वह कहेगा 'नहीं है' । यदि तुम यही प्रश्न दुख, बीमारी, बुढ़ापे और मृत्युसे

करो तो सबके सब चिल्ला कर तुम्हें यही उत्तर देंगे "न पाप है न पुण्य है।" राम! वास्तवमें जिस कार्यसे समाजका अमंगल होता है वही पाप है। पाप और पुण्य समाजकी दण्डविधि है और तुम समाजके प्रतिनिधि ।

राम—तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं सीताको त्याग दूं ? कहिये, कहिये गुरुदेव ! क्या आपकी यही आज्ञा है ?

कर्म—राम ! कर्त्तव्य पालनके लिये परशुरामने पितु आज्ञासे माताकी हत्या की। कर्त्तव्य पालनके लिये दशरथने राम जैसे पुण्यात्मा पुत्रको बनबास दिया। माताकी हत्या और पुत्रका वियोग स्त्रीके त्यागसे बढ़कर क्या हृदय-विदीर्ण कार्य है ? नहीं राम ! राज्य भक्ति पाना सहल नहीं है। इसके लिये बहुत कुछ स्वार्थ त्याग करना पड़ता है ।

राम—इसलिये......

कर्म—सीताको त्याग दो ।

राम—"सीताको त्याग दो" गुरु वशिष्ठ कहता है। कुल पुरोहित कहता है। नहीं नहीं तुम वशिष्ठ नहीं हो। रामको धोका मत दो। रामको अन्धा न बनाओ। बताओ, बताओ तुम वशिष्टके भेसमें कौन हो ? वर्नः ....

कर्म—धैर्य्य भगवन ! धैर्य्य।

राम—कौन कर्म ?

कर्म—प्रणाम, नरश्रेष्ट ! प्रणाम । भगवन ! मैं निर्दोष हूं ।

राम—समझा, समझा । कर्म ! जाओ, जाओ । वही होगा, जो तुम चाहते हो वही होगा (प्रस्थान)

कर्म—सत्य है,—

कर्मकी चौसर नहीं होती है सर तदबीरसे ।
मात खाती है सदा तदबीर ही तकदीरसे ॥
लाख सर पटकें मगर होनी कभी टलती नहीं ।
कर्मके आगे तो ब्रह्माकी भी कुछ चलती नहीं ॥

हां इसी लिये तो कर्मसे जगकर्त्ता भी घबराया । क्यों कुछ आपके.........

[गाना]

यह सर्व सृष्टी है नाट्यशाला, विधाता अभिनय दिखा रहा है ।
मनुष्य जीवनका खेल रचकर, मनुष्य हीको नचा रहा है ॥
छओं ऋतु और चारों आश्रम, बने हैं जिसके यह दृश्य सारे ।
जनम् मरण की लगाई फेरी, जो आ रहा है वह जा रहा है ॥
विचित्र नाटक है जिन्दगीका, विचित्र इसके हैं अंक तीनों ।
बनाके बालक, जवान, बूढा, उमरका परदा गिरा रहा है ॥
कभी उदासी, कभी विलासी, कभी है डाकू, कभी है साधू ।
किसीका जीवन बिगाड़ता है, किसीका जीवन बना रहा है ॥
हँसाये सुखके सुनाके गाने, रुलाये दुखके सुनाके गाने ।
मगर यह कोई नहीं समझता, कि "शैदा" क्या गीत गा रहा है ।

आठवां दृश्य ।

स्थान--रामका विश्राम भवन ।

[राम अकेले चिन्तत अवस्थामें कभी बैठते हैं, कभी उठकर टहलते हैं]

राम—राजाका जीवन चिन्ता, आपदा और क्लेशकी दहकती हुई भट्टी है जिसमें कर्त्तव्यका देवता सुख और सौभाग्यकी आहुति देता है। राजाका जीवन एक विशाल पर्वत है दूरसे जिसकी ऊंचाई देखकर हर इक मनुष्य ईर्ष्या करता है किन्तु पास जाकर यह कोई नहीं देखता कि वह पर्वत किस दशामें जीवन बिताता है। ज्येष्ट-आषाढ़में अग्नि स्वरूप सूर्यका ताप सहता है, सावन-भादोंमें आंधी और बरसातसे घोर संग्राम करता है। पौष और माघमें मृत्युवश बरफकी चादरें ओढ़े रहता है। इतने दुखोंपर जब कभी उसके एकान्तमय सुन्सान हृदयसे हाहाकार निकलता है तो दुनिया उसे भूकम्प समझकर उससे डरती है, उससे घृणा करती है। राज्यभार! नीति अनुसार तुझे सरपर उठाना कठिन सार, कठन व्यवहार। यदि विधाताने मुझे भरत, लक्ष्मण या शत्रुघ्न ही बनाया होता तो आज रामकी ऐसी दुखभरी यंत्रणा न सहता—

सीता-

उर्मिला

सीता-

उर्मिल

सीनेमें जब दिल न रहा तो राज्य फिर किस कामका ।
सीता विना जीवन निकम्मा है जहां में रामका ॥
मैंने प्रजाके चरणमें कर दी समर्पण जानकी ।
बस कर विधाता ! दे चुका हूं भेंट अपनी जान की ॥

शत्रुघ्न—(घबराये हुये प्रवेशकर) नहीं, नहीं भैय्या ! ऐसी निठुराई न कीजिये ।

राम—प्रिय शत्रुघ्न ! क्यों क्या हुआ ?

शत्रुघ्न—"क्यों क्या हुआ ?" तो क्या वह सब झूठी चर्चा है ।

राम—झूठी चर्चा नहीं सच्ची है ।

शत्रुघ्न—क्या सच्ची है ?

भरत—(प्रवेश कर) क्या सच्ची है ?

राम—भाई भरत ! प्रिय शत्रुघ्न ! सब सच्ची है ।

भरत—रघुनाथ और ऐसा वज्रपात ! मर्य्यादा पुरुषोत्तम राम और प्रेमका ऐसा घृणत परिणाम !

भरत—शत्रुघ्न(दोनों मिल कर) हो नहीं सकता ।

राम—नहीं वह तो हो चुका और कबका हो चुका । क्या करूं भरत ! तुम सब जानते हो । अयुध्याकी प्रजा मुझसे सीताका वियोग चाहती है और आज ही चाहती है ।

भरत—रघुबीर ! तो जो कुछ प्रजा कहेगी वही करना होगा ? जो कुछ मांगेगी वही देना होगा ?

राम—अवश्य ।

भरत—और यदि नीतिके विरुद्ध हो ?

राम—तो भी देना होगा ।

भरत—देना होगा ? यदि अयुध्याकी प्रजा राजद्रोही बनकर राज्य सम्पत्तिको लुटाना चाहे; यदि अयुध्याकी प्रजा भारतके सर्व देवस्थानोंको गिराना चाहें; यदि अयुध्याकी प्रजा शंकर और विष्णुकी प्रतिमाको नगरकी गन्दी नालियोंमें बहाना चाहें; यदि अयुध्याकी प्रजा ब्रह्महत्या को धर्मका अंग बनाना चाहें तो भी आप प्रजाका साथ देंगे ?

राम—हां ।

भरत—कारण ?

राम—कारणकि राजा प्रजाकी दयापर जीता है। राजा प्रजाका सेवक है।

> धन्य है वह भूपती जिसको प्रजासे प्यार है।
> जो न हो राजा प्रजाका उसको सो धिक्कार है ॥
> तुच्छ है सीता सनेह जनता सनेहके साम ने ।
> कह दिया बस आजसे सीताको छोड़ा रामने ॥

भरत—हैं हैं भैय्या ! यह आपने क्या कहा ? कहां वह पवित्रता-की मूर्ति, स्त्रीत्वकी प्रतिमा, देवी सीता और कहां अयुध्याकी गलियोंमें भटकनेवाले कुत्ते ! कहां वह नील-वरण आकाशमें प्रकाशमान उज्वल नक्षत्रोंकी आभा और कहां अयुध्याकी गन्दी नालियोंमें बहनेवाले अपवित्र कीड़े !

आपको सजते नहीं यह शब्द हैं अपमानके;
जानकी माता सती है, योग्य है सन्मानके।

राम— योग्य है सन्मानके वह प्रीतिमय है रामकी;
पर न जो भाई प्रजाको वह मेरे किस कामकी।
हो खुशी जिसमें प्रजाकी उसमें सुख है, क्षेम है;
मैं हूं चातक, स्वाती जल मेरा, प्रजाका प्रेम है।

भरत—किन्तु जहां आप प्रजा प्रेमका पालन करते हैं वहां आपको नारी-प्रेमका भी पालन करना चाहिये—

कारण कि नारी प्रेमसे ही गृहस्थका कल्याण है;
जिस घरमें हो नारी-दुखी वह घर नहीं श्मशान है।
नारी न हो दुन्यामें तो दुन्या है फिर किस कामकी;
है जानकी दुन्यामें तो दुन्या है सारी रामकी।

राम—भरत! यह वादविवाद सब वृथा है। रामने जो निश्चय कर लिया वह अटल है।

भरत—भैय्या! भैय्या!! यह आप क्या कह रहे हैं।

राम—भरत! राम नहीं कहता समय कह रहा है?

[गाना]

सब दिन होत न एक समान।
दुख सुख जीवन भोग हि मानो, दो दिनकी गुजरान ॥
इक दिन राजा हरिश्चन्द्रकी, सम्पति मेरु समान।
इक दिन जाय डूम घर सेवत, अम्बर हरत मसान ॥
इक दिन ध्रुवकी माता शुचिने, कीनो बड़ा अपमान।
इक दिन ध्रुवका दर्शन करने, आये श्री भगवान ॥

इक दिन सीता रुदन करत थी, महा विपिन उद्यान।
इक दिन राम सिया दोउ मिलकर, विचरत पुष्प विमान॥
प्रगट है पूरवकी करनी ही, तज मन सोच अजान।
तुलसीदास गुण कहुं ल[illegible] वरणो, विधिके अंक प्रमाण

(तुलसी)

लक्ष्मण—(प्रवेशकर) दुर्मुख पागल है। यह अवश्य किसी गु[illegible] राजद्रोहीने षड़यंत्र रचा है।

राम—षड़यन्त्र नहीं, लक्ष्मण! अयुध्याकी प्रजा एक स्वर[illegible] कह रही है।

लक्ष्मण—भैय्या! क्षमा करना—क्या कह रही है?

राम—यही की सीता अ-सती है।

लक्ष्मण—अ-सती है! सीता अ-सती है? आह इस 'अ' अक्ष[illegible] मानों चन्द्रमाकी पूर्ण कलाको राहु बनकर ग्रस लिय[illegible] इस 'अ' अक्षरने मानो काले सांपका रूप धारणकर[illegible] अन्तःकरणको डस लिया। सूर्य्याकी उज्ज्वल प्रका[illegible] मयी किरणों द्वारा खिली हुई कुमुदिनीके समान निर्म[illegible] नक्षत्रके समान पवित्र आचारणी, पति-ध्यानकी मा[illegible] जपनेवाली सीता अ-सती है?

राम—प्रजा यही कहती है।

लक्ष्मण—प्रजा यही कहती है और आपने मान लिया? आपने सीताका अ-सती होना मान लिया तो रामको यह भी मानना पड़ेगा कि आत्मा जड़

है, वायु स्थिर है, पर्वत चञ्चल है, बिजली पृथ्वीसे पैदा होती है, चन्द्रमा अग्नि बरसाता है, अग्नि जलके समान शीतल है, सूर्य पूर्वसे नहीं पच्छिमसे उदय होता है भैय्या! भैय्या!! क्यों वृथा एक मिथ्यावादी निन्द धोबीके रूपमें ज़हरीले सांपकी बातको मनके मणिम सिंहासनपर बिठाकर स्त्रीरत्नको कीचड़में फेंकना चाह हो? यदि सती-शिरोमणी सीताके साथ राम ऐसा बत करेंगे तो फिर पतिव्रता स्त्रीका हृदय पुरुषकी क्रीड़ा सामग्री समझा जायगा; सतीका हार्दिक प्रेम पुर उपहासका खिलौना बन जायगा; भारतीय रमणीके पति कर्त्तव्य भारतसे अलोप हो जायगा—

फिर तो नारी धर्मका होना न होना एक है,
जब कि जनताके लिये पीतल व सोना एक है।
इस लिये मानो मेरा भैय्या! न त्यागो जानकी;
जानकी संसारकी शोभा है, जीवन, प्राणकी।

- जानकी शोभा नहीं बिजली है वह अपमानकी;
डरके मारे त्याग दी जीवनमें मैंने जानकी।
कह दिया परित्याग तो परित्याग टल सकता नहीं;
मम प्रतिज्ञाको तो ब्रह्मा भी बदल सकता नहीं।

ग—प्रतिज्ञा? ऐसी कठिन प्रतिज्ञा? और माता जान परित्याग करनेके लिये? हँसते हुए फूलोंकी तर चरणोंमें अपने जीवनको अर्पण करना जिसका उद्देश्य है; सेवा, स्नेह और भक्ति जिसका

जनकनन्दनी

१४

कर्त्तव्य है, उस जानकीके साथ प्रेमके बदलेमें कृतघ्नता- की जाय; दयाके बदलेमें उसकी पीठमें छुरी भोंकी जाय; वह जानकी सेवाके बदलेमें निर्वासन दण्ड पाय,—

भैय्या ! ऐसे न कठोर बनो, मां सिता परम पुनीता है;
सीता भी वह सीता जिसने पति सेवाका रण जीता है।
श्रीराम प्रतिज्ञाकी दृढ़ताका त्याग करो वह सीता है;
सीता भारतकी पण्यमयी गंगा, गायत्री, गीता है।

राम— लक्ष्मण ! लक्ष्मण !! और क्या रामको भूल गये ?

चिन्ह बाकी है रघूकुलके अभी तक भालपर;
क्योंकि बेटा हूं मैं दसरथका, पितामा थे सगर।
इस लिये मुझको लखन ! अपने वचनसे प्रीत है;
प्राण जायें पर न जाय धर्म, कुलकी रीति है।

लक्ष्मण—सत्य है भैय्या ! किन्तु सीता अ-सती......

राम—लक्ष्मण !

लक्ष्मण—राम !

राम— "हरि इच्छा भावी बलवाना।
तुम कहु तात सदा कल्याना॥
यह मम वचन पाल लघु भाई।
प्रात जानकी जाओ लिवाई॥
आज्ञा मोरि जो टारई ताता।
रहे न प्राण तात मम गाता॥"

(रामका सीनेमें छुरी भोंकना चाहना, लक्ष्मणका रोकना)

लक्ष्मण—शांत ! शांत !! राम प्रतिज्ञा पूर्ण होगी—राम प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। (प्रस्थान)

कौशल्या—(प्रवेशकर) हैं हैं बेटा! यह क्या अनर्थ कर
हो? क्या सर्वनाश करना चाहते हो?

राम—लक्ष्मण! गया? माता! तुम यहां?

कौशल्या—बेटा! क्या मैं यहां न आऊं? तुम जड़से क
वृक्षके समान भूमिपर अचेत पड़े हो और मैं यह
आऊं? मेरी कोक्षका रत्न; रघुकुलका दीपक; भा
सम्राट आत्महत्या करे और मैं यहां न आऊं?

राम—आओ माता! आओ। जननी! आओ। मात
आओ। रामको अपने चरणोंकी रज दो तारि
शून्य ललाटपर लगाकर अपनी कर्मरेखाको छि
आपको वृथा न कलपाऊं।

कौशल्या—मैं सब जानती हूं बेटा! मैं सब जानती हूं
न कि तुम मेरी राजरानी बहु, साक्षात लक्ष्मी, स
त्याग दोगे। किन्तु राम! क्या यह सत्य है?

राम—यदि उदय और अस्त सत्य हैं; उत्पत्ति और विनाश
है तो यह भी सत्य है।

कौशल्या—तो क्या मैं इस सत्यपर विश्वास करूं?

राम—अवश्य। आपके विश्वास करनेपर ही तो मेरी
सफल होगी।

कौशल्या—राम! मैं यह जानती हूं कि राजकार्यके
'यह क्यों हुआ,' 'वह क्यों हुआ' कहकर दखल
जातिका काम नहीं, इसलिये मैं तुमसे अनुर
करती, केवल विनय......

राम—नहीं नहीं माता ! यह मुझसे न होगा।

कौशल्या—न होगा। क्या कहा न होगा ?

राम—जननी ! ईश्वरके लिये अनुरोध न करो।

कौशल्या—तो क्या मैं अपनी जीवन-लक्ष्मीको घरसे बाहर फेंक दूं ? अपने कुलकी लज्जाको कूड़ेके ढेरपर फेंक दूं ? अपने वंश-वृद्धिकी-रत्न खानको वन भेज दूं ? न होगा, राम ! मैं जीतेजी ऐसा न होने दूंगी।

राम—माता ! मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं।

कौशल्या—"प्रतिज्ञा कर चुका हूं" यदि प्रतिज्ञा कर चुके हो तो फिर बताओ, बताओ तुम्हें प्रतिज्ञाको निभानेकी शक्ति किसने दी ? मैंने—मेरे दूधने। राम ! आज वही दूध तुमसे अपनी शक्ति वापिस लेना चाहता है। मैं तुमसे वापिस लूंगी और अवश्य लूंगी। राम ! ईश्वरके लिये सीताका त्याग न करो। देखो, देखो, आज तुम्हारी माता—रामकी माता, मर्य्यादा पुरुषोत्तम पुत्रके सामने बाहें फैलाकर भिक्षामें सीता मांगती है क्या तुम न दोगे ? सीता न दोगे ? राम ! राम !! बोलो, बोलो !

(पांवपर गिरना)

राम—जननी ! जननी !! ऐसा हृदय-विदीर्ण दृश्य, आह ! मेरा भविश्य। जिस चरण रजके प्रतापसे मेरे पूर्वज भागीरथ हिमनन्दिनी गङ्गाको सुरलोकसे पृथ्वीपर लाये; जिस चरण रजके प्रतापसे व्यास पुत्र सुकदेव पैदा होते ही

आत्मज्ञानी कहलाये; जिस चरणरजके प्रतापसे भगवान परशुरामने २१ बार क्षत्री वंशका संहार किया; जिस चरणरजके प्रतापसे मैंने लंकापति रावणपर विजय पाई, आज वही रज मेरे पैरोंपर—उसी चरणरजकी स्वामिनी मेरी माता—आखोंमें आँसुओंकी जलधारा लिये दीन-अधीन भावसे गुठने टेके मुझसे भिक्षा मांग रही है और मैं 'नहीं दूंगा' 'नहीं दूंगा' कहकर जननीका तिरस्कार करूं ? नहीं नहीं, कभी नहीं। चाहे न्याय मर्य्यादाका नाश हो, रामको मानसिक कष्ट हो, संसारमें राम प्रतिज्ञाका भ्रष्ट हो तो भी यही कहूंगा—आकाशके नक्षत्रोंको सुनाकर यही कहूंगा, रात्रिके प्रमाणुओंको सुनाकर यही कहूंगा कि माता ! उठिये, जननी ! उठिये, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

कौशल्या—"इच्छा पूर्ण हो।" क्या कहा बेटा ! मेरी इच्छा पूर्ण हो ?

कर्म—(प्रवेशकर) इच्छा पूर्ण हो ?

मनुष्य इच्छा पूर्ण हो सकती है श्री रघुबीरसे;
पर कर्मका लिक्खा नहीं टलता किसी तदबीरसे।

राम—कौन कर्म ? जननी ! सुना !

कौशल्या—हां सुना।

राम—मां ! मैं विवश हूं, पराधीन हूं।

कौशल्या—बेटा ! बेटा !! आह कर्मगति ! कर्मगति । सीता ! सीता (मूर्च्छा)

राम—(ध्यानमें सीताको बनबासमें देखना) सीता ! सीता !! सीता !!!

(शत्रुघ्नका माताको सम्भालना । भरतका रामको सम्भालना)

नवां दृश्य ।

स्थान—जंगल ।

[सीता और लक्ष्मणका प्रवेश]

सीता—अहा जी कैसा रमणीय समय ! कैसा दिव्य सुहाना प्रातःकाल ! सूर्यकी स्वर्णमयी किरणोंपर चढ़कर शून्य आकाश मार्गसे चुप चाप धीरे धीरे पृथ्वीपर उतर रहा है ! अहा ! ऐसा मनहरण प्रातःकाल देखकर कुञ्जोंमें असंख्य कलियां दिव्य हँसीके साथ खिलखिलाती हुई इसका स्वागत मना रही हैं । तिसपर,—

शीतल मन्द सुगन्ध पवनका;
सनसन शब्द लगे अति प्यारो ।
झूलतडाल सुडाल झूलना;
झुकझुक भूमि पड़त मतवारो ॥
नाचत मोर, चकोर, सारसा;
मधुवनकी शोभा भई न्यारो ।
बोलत बोल अमोल कोकिला;
"शैदा" प्राण होत बलिहारो ॥

वत्स लक्ष्मण !

लक्ष्मण—माताजी !

सीता—यही जी चाहता है कि कुछ देर यहीं विश्राम करूं ।

१४

जै
तै
व
द

सीत
उर्मि
सीत

उर्मि

लक्ष्मण—विश्राम ? (आह भरकर) माता ! क्या आप यहं विश्राम करना चाहती हैं ?

सीता—हां वत्स ! इससे अधिक रमणीय स्थान और कहां होगा ? तमसा नदीका किनारा, स्थिर—निर्मुक्त आकाशका सहारा—पुष्पलताकी छाया—ऐसा मनभाया स्थान और कहां होगा !

लक्ष्मण—माता ! उसपार इससे भी अधिक कई रमणीयस्थान हैं। यदि वहां विश्राम कीजियेगा तो...

सीता—अच्छा वत्स ! जैसी तुम्हारी इच्छा।

लक्ष्मण—मेरी इच्छा ? नहीं, नहीं, दैव—इच्छा।

सीता—दैव इच्छा ? नहीं नहीं वत्स ! राम इच्छा कहो, राम इच्छा।

लक्ष्मण—अच्छा योंही सही।

सीता—रामइच्छा, रामइच्छा। मैं जो यह स्वर्गीय दृश्य देख रही हूं सब राम इच्छाका ही फल है। उनके स्नेह, दया और ममताको स्मरण करके मुझे अपने सौभाग्यका बड़ा गर्व होता है। मैं तो निनप्रति शंकराणी, उमा-भवानी, से यही आशीश मांगती हूं.....

लक्ष्मण—क्या आशीश मांगती हैं माता !

सीता— यही आशीश मांगूं राम मन हरता बनें मेरे;
यदी मैं फिर बनूं नारी तो वह भरता बनें मेरे।
मैं निस दिन हृदय-वीणापर यही आलाप सुनती हूं;
रघुबर हैं मेरे, अन्तरध्वनिसे आप सुनती हूं।

लक्ष्मण—(मनमें) आह कैसा अपूर्व स्नेह ! कैसा अविरल स्नेह !!

सीता—लक्ष्मण ! चलो, चलो, उस रमणीय स्थानपर शीघ्र चलो ।

लक्ष्मण—जो आज्ञा माता !

पट परिवर्त्तन ।

स्थान—तमसा नदीका किनारा दण्डकाश्रम ।

(सीता और लक्ष्मण रथपर आते हैं)

सीता—(उतरकर) अहा ! रमणीय, अतिरमणीय । किन्तु यदि राम साथ होते तो और रमणीय हो जाता कारण कि आकाशका रत्न सूर्य है: संसारका रत्न पुत्र है: जीवनका रत्न निरोगता है और नारीका रत्न पति है, पति, निश्चय पति ।

धन्य वह नारी जो दुख झेले पतीके वास्ते;
है अमोलक रत्न पति सेवा सतीके वास्ते ।
मिल गया यह रत्न तो जीवनकी सम्पति मिल गयी;
मिल गयी जिसको यह दौलत उसको मुक्ती मिल गयी ।

लक्ष्मण—(आह भरकर)

छीन ली प्रारब्धने माता सियाकी सम्पती;
हाय ! क्या जीवित रहेंगी सुनके अपनी दुर्गती ।
देखकर इनकी अवस्था आत्म-बल रोने लगा;
तनमें कैसी कपकपी ! पैरोंको क्या होनेलगा ।

१४

लक्ष्मण—विश्राम ? (आह भरकर) माता ! क्या आप यहीं विश्राम करना चाहती हैं ?

सीता—हां वत्स ! इससे अधिक रमणीय स्थान और कहां होगा ? तमसा नदीका किनारा, स्थिर—निर्मुक्त आकाशका सहारा—पुष्पलताकी छाया—ऐसा मनभाया स्थान और कहां होगा !

लक्ष्मण—माता ! उसपार इससे भी अधिक कई रमणीयस्थान हैं। यदि वहां विश्राम कीजियेगा तो...

सीता—अच्छा वत्स ! जैसी तुम्हारी इच्छा।

लक्ष्मण—मेरी इच्छा ? नहीं, नहीं, दैव—इच्छा।

सीता—दैव इच्छा ? नहीं नहीं वत्स ! राम इच्छा कहो, राम इच्छा।

सी

लक्ष्मण—अच्छा योंही सही।

र्ग

सीता—रामइच्छा, रामइच्छा। मैं जो यह स्वर्गीय दृश्य देख

र्स

रही हूं सब राम इच्छाका ही फल है। उनके स्नेह, दया और ममताको स्मरण करके मुझे अपने सौभाग्यका बड़ा गर्व होता है। मैं तो नितप्रति शंकराणी, उमा-भवानी, से यही आशीश मांगती हूं......

लक्ष्मण—क्या आशीश मांगती हैं माता !

सीता— यही आशीश मांगूं राम मन हरता बनें मेरे;
यदी मैं फिर बनूं नारी तो वह भरता बनें मेरे।
मैं निस दिन हृदय-वीणापर यही आलाप सुनती हूं;

उ

रघुबर हैं मेरे, अन्तरध्वनिसे आप सुनती हूं।

लक्ष्मण—(मनमें) आह कैसा अपूर्व स्नेह ! कैसा अविरल स्नेह !!

सीता—लक्ष्मण ! चलो, चलो, उस रमणीय स्थानपर शीघ्र चलो।

लक्ष्मण—जो आज्ञा माता !

पट परिवर्त्तन।

स्थान—तमसा नदीका किनारा दण्डकाश्रम।

(सीता और लक्ष्मण रथपर आते हैं)

सीता—(उतरकर) अहा ! रमणीय, अतिरमणीय। किन्तु यदि राम साथ होते तो और रमणीय हो जाता कारण कि आकाशका रत्न सूर्य है: संसारका रत्न पुत्र है: जीवनका रत्न निरोगता है और नारीका रत्न पति है, पति, निश्चय पति।

धन्य वह नारी जो दुख झेले पतीके वास्ते;
है अमोलक रत्न पति सेवा सतीके वास्ते।
मिल गया यह रत्न तो जीवनकी सम्पति मिल गयी;
मिल गयी जिसको यह दौलत उसको मुक्ती मिल गयी।

लक्ष्मण—(आह भरकर)

छीन ली प्रारब्धने माता सियाकी सम्पती;
हाय ! क्या जीवित रहेंगी सुनके अपनी दुर्गती।
देखकर इनकी अवस्था आत्म-बल रोने लगा;
तनमें कैसी कपकपी ! पैरोंको क्या होनेलगा।

ओ विधाता! ओ विधाता!! क्या मेरे भाग्यमें यही लिखा था (मूर्छित होनेसे अपने आपको संभालना)

सीता—(दौड़कर) हैं हैं लक्ष्मण! तुम्हें क्या हुआ? वत्स! तुम रो रहे हो—क्यों किस लिये?

लक्ष्मण—कुछ नहीं माता! कुछ नहीं।

सीता—तो फिर रोनेका कारण?

लक्ष्मण—यही कि मैं अबतक जीता हूं।

सीता—जीओ, वत्स! अमर बनकर जीओ। किन्तु इतने व्याकुल होकर क्यों रो रहे हो?

लक्ष्मण—अपने जीवनके लिये—अपने कर्त्तव्यके लिये।

सीता—भूल करते हो लक्ष्मण! भूल करते हो। तुम्हारा जीवन वह सूर्य है जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी दुनियामें प्रकाशमान है। तुम्हारा कर्त्तव्य वह पवित्र माला है जो गायत्री, लक्ष्मी और पार्वतीके गलेमें शोभायमान है।

क्षीर सागरसे अधिक गम्भीर हो गुण रूपमें;
कौन है सानी तुम्हारा लक्ष्मण! इस भूपमें।
तुम तो हो आदर्शजन सबके लिये संसारमें;
क्यों डुबाते हो मुझे फिर आंसुओंकी धारमें।

लक्ष्मण—इस कदर शक्ती कहां इन आंसुओंकी धारमें;
जो मेरा नैय्या लगा दें इस नदीके पारमें।
जिस जगह आनन्द सुख और शान्तीका धाम है;
इस जगह ममता खड़ी है उस जगह हरि नाम है।

सीता-- आजकी बातोंका मतलब कुछ समझ आता नहीं;
छोड़ दो तुम यह प्रसंग मुझको लखन ! भाता नहीं ।
तुमसे जब आदर्शजन भागेंगे इस संसारसे;
तो बचायेगा हमें फिर कौन इस मँझधारसे ।

लक्ष्मण—वह बचायेंगे सभोंको जिनके लम्बे हाथ हैं;
जो अनाथोंके सहायक बेकसोंके नाथ हैं ।
पूजते हैं वद आठों पहर जिनके नामको;
भूल सकता है कोई ऐसे दयालु रामको ।

सीता—सुनाओ, सुनाओ, राम नामकी महिमा सुनाओ । मेरे कान प्यासे हैं इनकी प्यास बुझाओ ।

देखती हूं दिलकी आंखोंसे अगरचे दूर हैं;
आंखके परदे खुले हैं कान पर मजबूर हैं ।
खोल दो कानोंके परदे रामकी झंकारसे;
ता कि आंखें लेके जायें कान भी संसारसे ।

लक्ष्मण—धन्य हो पतिप्राणा, शुद्धाचारणी माता सीता ! तुमको धन्य हो । किन्तु देवी ! मुझमें इतनी सामर्थ्य कहां जो राम नामकी महिमाका बखान कर सकूं ?

हार गये जोगी सिद्ध जंगम कोटि जनम् जिन ध्यान लगाओ;
हार गये सनकादिक से गुणवन्त महन्त जो सन्त कहाओ ।
हार गये नारद शारद पुनि ब्यास मुनी जिन वेद बताओ;
हार गये ब्रह्मा शंकर पर रामके नामका अन्त न पाओ ।

ध्वनि—(नेपथ्यमें) "बैठत राम ही ऊठत राम ही, बोलत रामही राम रह्यो हैं" ।

सीता—सुनो, सुनो, लक्ष्मण! कदाचित् कोई गंधर्व नभ—मण्डलमें गा रहा है।

ध्वनि—"जागत रामही, सोवत रामही, देखत रामही राम रह्यो है,
जीवत रामहा, पीवत रामहा, सम्पत रामही राम गह्यो है;
देवत रामही, लेवत रामही, रामही रामही राम कह्यो है।"

सीता—अहा कैसा मनोहर गीत गा रहा है। मानो वनकी लताओं, डालिओं और वृक्षोंपर रामनामका अमृत वरसाकर जड़ वस्तुको चैतन्य वना रहा है। गाय जा, गाय जा, और ऊंचे स्वरोंमें गाय जा ता कि मेरा वैरागी मन जो रामके ध्यान-सागरमें जल-समाधी लगाय बैठा है सुन सके। चलो चलो लक्ष्मण! अब मैं यहां और नहीं ठहर सकती क्योंकि रामका प्रेम मुझे बुला रहा है।

लक्ष्मण—"रामका प्रेम बुला रहा है?" झूठ, मिथ्या, धोका।

सीता—"झूठ, मिथ्या, धोका" लक्ष्मण! क्या यह तुम्हारी आवाज़ है?

लक्ष्मण—देवी! क्या आपको भ्रम हुआ?

सीता—वत्स! मेरी श्रवण—शक्ति शिथिल होगयी। मैं तुम्हारी आवाज़ पहचान नहीं सकी।

लक्ष्मण—पहचाने, पहचानो।

सीता—लक्ष्मण! मैं इसका अर्थ नहीं समझी। मुझे शीघ्र बताओ क्योंकि मैं इस चिन्तावस्थामें और मुहुर्त भर भी नहीं ठहर सकती।

लक्ष्मण—(मनमें) आवाज़ मनका चित्र है; लेखनी मनकी जिह्वा है। जिह्वा! जिह्वा!! यदि तुम अत्मिक बल रखती हो, राम आज्ञा सुना सकती हो तो सुनाओ, सुनाओ। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं। हैं! किन्तु तुम्हें क्या हुआ, तुम जड़ वस्तु क्यों बन गईं?

सीता—चलो, चलो लक्ष्मण, घर चलें। तुह्मारी अवस्था देखकर मेरा जी घबरा रहा है।

लक्ष्मण—विपदामें घबराना उचित नहीं। मोती सी बून्दें काले बादलोंसे ही बरसती हैं।

सीता—वत्स! वत्स! तुम किससे बातें कर रहे हो? यहां तो कोई मुनि नहीं, मुनि पत्नी नहीं, मेरे पास कोई देने योग्य वस्त्र भी नहीं रहा। चलो चलो, घर चलें।

लक्ष्मण—आपत कालमें मनको वशमें रखो, जो दुख सुख आये उसे कर्मभोग अथवा राम प्रसाद समझकर सर्वदा प्रसन्न रहो।

सीता—लक्ष्मण! लक्ष्मण!! तुम आज अवश्य मेरे प्राण लोगे।

लक्ष्मण—जिसने लक्ष्मी बनकर संसारका पालन किया; सतीके रूपमें दक्षका अभिमान तोड़ा; महाकाली बनकर मैखासुरका वध किया, उस आदि शक्ति भवानीके प्राण कौन ले सकता है?

सीता—लक्ष्मण! लक्ष्मण!! तुम्हारे मस्तकमें भ्रम-वायुने प्रवेश किया जो ऐसी बहक लगा रहे हो। चलो, चलो, घर चलो।

लक्ष्मण—यदि यही इच्छा है तो लो मैं चला। माता! प्रणाम।

सीता—कहां? कहां?

लक्ष्मण—रामके पास।

सीता—तो फिर देखते क्या हो शीघ्र चलो।

लक्ष्मण—आप नहीं।

सीता—तो क्या मैं यहां अकेली रहूंगी? नहीं,मैं अवश्य जाऊंगी।

लक्ष्मण—अ—अ—अ। (मूर्छित होना)

सीता—हैं हैं दई! यह क्या? आज अवश्य कुछ न कुछ दुर्घटना होनेवाली है। शगुन अच्छे नजर नहीं आते। उठो, उठो, मेरी जीवन दुनियाके खिलोने! उठो, हँसो, खेलो तुम्हें सीता बुलारही है। आह! क्या करूं? कहां जाऊं?

> खिल रहा है सूर्यवंशी फूल दुखकी धूलमें;
> हाँसका सुगन्ध डालूं किस तरह इस फूलमें।

आकाशवाणी—"सनु सौमित्रि जाहु सिय त्यागी।
जनक पुत्रिका जिहै हि सभागी॥"

सीता—हैं! यह कैसी आकाशवाणी।

कर्म—(प्रगट होकर) धैर्य्य राजराणी! लक्ष्मण! वीर लक्ष्मण! (जगाना)

> कर्तव्य ही का पालना केवल तुम्हारा काम है;
> तुम छोड़ दो चिन्ता सभी सीताका रक्षक राम है।
> श्रीरामकी आज्ञा पे गर सीताका दृढ़ विश्वास है;
> तो बस समझले जन्म भरके वास्ते बनबास है।

सीता—वनवास? सीताको वनवास?

सी ई सी उ

लक्ष्मण—त्रास ! त्रास !!
सीता—लक्ष्मण, लक्ष्मण !!
लक्ष्मण—प्रणाम, माता ! अन्तिम प्रणाम !

> आज्ञा श्रीरामकी कर्त्तव्यकी तस्वीर है;
> और इन चरणोंका जल गोदावरीका नीर है।
> हथकड़ी हाथोंमें है और पांवमें जंजीर है;
> इक तरफ माता सिया है इक तरफ रघुबीर है।
> तनकी नय्या डूब जायेगी तो गोते खाऊंगा;
> कर्म-वैतरणीसे फिर मैं पार कैसे जाऊंगा।

राम आज्ञा ! राम आज्ञा !! (जाना)

सीता—लक्ष्मण ! लक्ष्मण !! गया, यह भी गया ! लक्ष्मण तो अपने कर्त्तव्यका पालन कर गया अब मेरी बारी है, मेरी बारी है। सीता ! यह जन्मभरका बनवास नहीं स्त्री महत्वकी, स्त्री कर्त्तव्यकी, स्त्री धर्म की गुप्त शिक्षा है। मैं इस पवित्र शिक्षाको प्राप्तकर पति आज्ञाको अमर बनाऊंगी। 'पति—भक्ति किसे कहते हैं'—मनुष्य जातिको, स्त्री समाजको, दिखाऊंगी-दिखाऊंगी। किन्तु इस निर्जन बनमें, विरहाग्निमें, त्राहि त्राहि ! (गिरना)

बालमीकि—(प्रवेशकर) क्या राम प्रिय, जनक सुता, सीता आ गई ? बन भूमि ! इस आदि शक्तिका स्वागत मनोओ। क्या देखती हो स्वर्गपुरी बन जाओ।

पट परिवर्त्तन।

(स्वर्गपुरीका दिखाव)

ड्राप।

द्वितीय अंक।

पहला दृश्य।

[स्थान—अन्तःपुर]

(राम सोच—मॅझधारमें डूबे हुये हैं। बालिकायें नाच गा रही हैं)

[गाना]

सुख सागर, रघुवंश उजागर, लीला ललित मनोहर प्यारे।
यक्ष सुधारन, असुर संहारन, गौतम नारि उधारण हारे।
जनक स्वयम्बर पावन कीनो, जनक सुताको ब्याहन हारे।
पिता वचन सुन राज काज तज, अनुज सहित बनको पग धारे।
बाली वधन, वैदेही शोधन, लंका पति भुज भंजन हारे।

सी
र्ड
र्स

राम—बालिकाओ! जाओ-गाना विसर्जन।

(सबका बारी बारी सर झुकाते हुए जाना)

गाना तो विसर्जन हो गया। किन्तु मनकी व्यथा, आत्मिक चिन्ता विसर्जन न हुई। मैं अबतक जीता हूं। क्यों जीता हूं—आश्चर्यतो यही है। मैं पश्चातापकी अग्निमें जलता हूं। क्यों जलता हूं? विधाताका विधान ही यही है। जिस दिन यह देह छुट जायगी उस दिन मेरा जीवन होगा। कोई नहीं समझता, कोई नहीं जानता, कि मेरे हृदयमें कैसी यंत्रणा, कैसी चिन्ता ऊधम

उ

मचाया करती है। आह! बस बस अब और मुझसे सहा नहीं जाता। छाती फटी जाती है। ओहो: जिस सतीके हृदयमें मेरे लिये अनन्त विश्वास, अनन्त सन्मान अनन्तप्रेम, अनन्त स्नेह था उस सतीके साथ मैंने कैसा अन्याय, कैसा अत्याचार किया।

(रो पड़ना और फिर रोते हुये)

[गाना]

चन्द्र बिन रजनी, सरोज बिन पंकज;
फल बिन वृक्ष पक्षी बिन पर के।
पुत्र बिन धाम, पत्नी बिन भरता,
धन बिन धर्म, योधा बिन कर के।
ध्यान बिन भजन, कविता बिन पिङ्गल;
जन बिन धीर, जीवन बिन ज़र के।
ऐसो न सुहात, विफल बीत जात;
सीता बिन श्वास, श्री रघुवर के।

राम—(गानेके पश्चात)

रामके जीवनकी वीणा हो चुकी है बेसुरी;
क्योंकि इसमें खरजकी तारा थी सीता गुण भरी।
जिसके जानेसे गई आनन्दकी भागेश्वरी;
साँस जब लेता हूं तब चलती है सीनेमें छुरी।
देह-रूपी वाटिकामें प्राण माली रह गया;
उड़ गयी जीवन चकोरी चान्द खाली रह गया।

लक्ष्मण—(प्रवेशकर)

मेरे दिलमें जो रघूका रक्त था सब बह गया;
अब तो केवल सांस लेनेको यह पिंजर रह गया।
छोड़ आया जानकी माताको मैं मंझधारमें;
हो गयी पूरी प्रतिज्ञा रामकी संसारमें।

राम—मनुष्यका शरीर भवसागरसे पार उतरनेकी नाव है, जिसमें क्षमा उसके खेनेका चप्पू, उपकार उसके स्थिर रखनेका भार, सुकर्म अगम-धारासे खीचनेका रस्सा और सद्धर्म उस नावके पालमें भरनेवाली हवा। लक्ष्मण! राम तुह्मारा धन्यवाद करता है।

तुम दयाका रूप हो उपकारके अवतार हो;
शक्ल हो शुभ कर्मकी तुम मेरे खेवनहार हो।
मानता हूं दिलसे भाई! मैं तुम्हारी प्रीतिको;
तुमने ही केवल निभाया सूर्यवंशी रीतिको।

सी
र्उ
र्स

लक्ष्मण—मान्यवर भ्राता! जो कुछ आपने मेरे बिषयमें कहा है वह स्वयम आप हैं!

राम—और तुम?

लक्ष्मण—रामका सेवक हूं मैं सेवासे मुझको प्यार है;
रामका सेवक बना यह आपका उपकार है।
जीवका आना यहां सेवा बिना किस कामका;
जबसे यह दुनिया बनी तबसे हूं सेवक रामका।

उ

राम—(लक्ष्मणको गले लगाकर) सीखो, देवताओ! सीखो भाइका कर्त्तव्य सीखो। तीर्थ, व्रत, यज्ञ, देवता, मंत्र और वृक्ष

समय पाकर फल देते हैं किन्तु सच्चा प्रेम, सच्चा स्नेह रखनेवाले लक्ष्मणसे साधु भाई आयुकी हर सांसकी हरकतके साथ फल देते हैं।

मिल गये जो तुम मुझे सुख मिल गया संसारका;
मूल कारण ही तुम्हीं हो रामके उद्धारका।
सर्व-सम्पत्ति ले गये तुम आज मेरे प्यारकी;
जो खिवैय्या बनके मेरी धर्म नैय्या पार की।

[गाना]

नैय्या मोरी डगमग डोले आन पड़ी मँझधार....
घोर घटा घनघोर उठी, जल बरसत मूसलधार।
चौ दिश भंवर पड़त हैं दुखके भैया खेवनहार...
नैया मोरी तनिक सी भैया, पड़ा राज्यका भार।
लगा दयाका हाथ तुम्हारा, हो गई नैया पार....

लक्ष्मण—प्रभु! क्या रामकी नैया पार हो गई? इसका तात्पर्य?

राम—भीतरकी आँखोंसे देखो, मालूम हो जायगा।

लक्ष्मण—जो आज्ञा।

(लक्ष्मणका आंखें बन्द करना, सीनके पिछले भागमें क्षीर सागरका दृश्य नजर आना)

राम—क्यों लक्ष्मण! कुछ देखा?

लक्ष्मण—हां प्रभु! देखा। अहा क्षीर सागर! राम विष्णु भगवान्, लक्ष्मी माता जानकी! किन्तु शेशनाग कहां हैं? (सीनका अदृश्य होना)

१४

राम—मेरे सामने। आओ आओ वत्स! समय थोड़ा है। अभी संसारको बहुत कुछ दिखाना है

(दोनों जाना चाहते हैं, सामनेसे विशिष्ठ आते हैं)

विशिष्ठ—अयुध्या नरेश!

राम—कौन गुरु वशिष्ठ?

दोनोभाई—गुरुदेवके चरणतलमें प्रणाम।

विशिष्ठ—तुम्हारा मंगल हो।

राम—आदेश गुरुदेव!

विशिष्ठ—रामराज्यमें ब्राह्मण जातिपर वज्रपात होनेके कारण यह ऋषि मण्डली रामसे न्याय चाहती है।

राम—पधारो, ऋषिवरो! पधारो। अहोभाग्य! जो आपने अपनी चरण रजसे अयुध्याको, इस राज्य-भवनको, मेरे शरीर को पवित्र किया। कहिये, कहिये ऋषिगण! राम आपकी सेवा किस रूपमें कर सकता है?

भूल जाऊंगा प्रजाके वास्ते निज क्लेशको;
प्राणसे पहले बचाऊंगा प्रजाको, देशको।
मेरा बल बाहू प्रजा है और प्रजा टकसाल है;
इस लिये मैं, मेरा धन, सब कुछ प्रजाका माल है।

विशिष्ठ—सुनते हो ऋषिवर! सुनते हो?

ऋषि—अहा ऐसा धर्मात्मा नरेश और ऐसा असीम क्लेश। अयुध्यानाथ! क्या कहूं मेरे वृद्ध जीवनकी लाठी मुझसे छीन ली गई; मेरा संसार उजाड़ा गया; मेरा हृदय-धाम सूना किया गया।

सी
र्उा
र्स
उ

कुछ नज़र आता नहीं मुझको मैं अंधा हो गया;
श्वासका चलनां गलेका काल-फन्दा हो गया।
बुझ गया है प्राण-दीपक मेरे हिरदय धामका;
ऐसी काली रातमें अब है सहारा रामका।

राम—ब्राह्मण देवता! मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।

ब्राह्मण—नहीं समझे तो फिर अब समझो। राम! तुम्हारे राज्यमें मेरा जीवन सूर्य अस्त हो गया; मैं निर्वंश हो गया; मेरा एक ही पुत्र था वह भी मर गया।

राम—आह! कैसा दुख भरा समाचार; तो क्या अब इसका दाह संस्कार करनेके लिये धन चाहिये?

ब्राह्मण—नहीं।

राम—तो क्या इसे जिलाना पड़ेगा?

ब्राह्मण—हां।

राम—मुनिवर! मृतिक शरीरको जिलानेकी मुझमें शक्ति नहीं। गुरुराज! मैं संजीवन मंत्र नहीं जानता।

वशिष्ठ—राम! अधीर न हो। सुनो, दक्षिण दशामें श्यैल्वपति शुद्रक राजा शम्भूक नामी अपने आचार व्यवहारको छोड़कर तपस्याकी तीक्ष्ण तलवारसे ब्राह्मण जातिपर वार कर रहा है। इसीसे यह दुर्घटना हुई कि तुम्हारे राज्यमें ब्राह्मणका पुत्र मर गया।

राम—गुरुदेव! इसका कारण?

वशिष्ठ—कारण यह है कि शास्त्रमें शुद्रजातिके लिये सन्ध्या, तर्पण, वेदपाठ, तपस्या आदि करना मना है,

१४

छोड़दे जब शूद्र अपने कर्मको व्यवहारको;
उस समय फिर झेलने पड़ते है दुख संसारको।
शूद्रका कर्त्तव्य है सेवा करे त्रै-वरणकी;
अपने मस्तक पर लगाये धूल उनके चरणकी।

लक्ष्मण—गुरुदेव! तो क्या शास्त्र पढ़नेका, पूजा, पाठ, सन्ध्या और तर्पण करनेका, केवल ब्राह्मण जातिको अधिकार है?

विशिष्ठ—नहीं, क्षत्री और वैश्य भी कर सकते हैं।

लक्ष्मण—तो क्या शुद्र जाति इतनी घृणित, इतनी अशुद्ध है कि वह ईश्वर उपासना भी नहीं कर सकती?

विशिष्ठ—शास्त्रकी तो यही आज्ञा है।

लक्ष्मण—गुरुदेव! यह आज्ञा नहीं वलिक शुद्र जातिपर घोर अत्याचार है,—

सी
र्डा
र्स

शूद्र बन सकता है ब्राह्मण कर्मके संचारसे;
शूद्र है गर शूद्र तो वह कर्मसे, व्यवहारसे।
कर्मको सब मानते है कर्म ही परवीण है;
शूद्र हो या वैश्य जो हो कर्मके आधान है।

विशिष्ठ—कुछ ही समझो किन्तु पुण्य कर्मादि शूद्रके लिये शास्त्रमें निषिद्ध हैं?

राम—लक्ष्मण (इशारा करना) गुरुदेव! फिर मुझे इसके लिये क्या करना होगा?

उ

विशिष्ठ—प्राण दण्ड।

राम—किसको?

विशीष्ठ—उस शूद्रक राजाको।

राम—यही होगा। भगवन ! मैं शास्त्र आज्ञाको सिरपर धरूंगा और कल प्रातः काल ही उस शुद्रक राजाको प्राण दण्ड देनेके लिये दक्षिण दशाकी यात्रा करूंगा। कुछ और ?

विशिष्ठ—भगवान तुह्मारा कल्याण करें।

राम—प्रणाम।

विशिष्ठ—कल्याण।

(सबका प्रस्थान)

राम—प्रिय लक्ष्मण ! तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।

लक्ष्मण— जो आज्ञा।

[प्रस्थान]

दूसरा दृश्य।
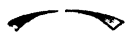
स्थान-तमसा नदीका किनारा।

दण्डकाश्रम।

(बरगद वृक्षके मध्यमें लताओंके बने हुए पंधूड़ेमें सीताके दोनों बच्चें लव-कुश सो रहे हैं)

सीता—प्राचीन कुल, अधिक धन और ऊंचा पद इन सबको घटाने बढ़ानेके लिये दुख और सुखके नवग्रह फूलोंमें रंग बनकर, सागरमें तरंग बनकर, कंवलमें मिठास बनकर और जीवनमें आस बनकर अपने अपने कर्त्तव्यको निभा रहे हैं। संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें "निर्मूल सुख" बिना दुखके पाया जाय। फिर ऐसी अवस्थामें शोक और चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है?

मालती—कुछ नहीं बहिन सीता! कुछ नहीं।

सीता—बहिन मालती! क्या वेद पाठ अग्निहोत्र समाप्त कर चुकी?

मालती—हां मेरा अग्निहोत्र तो समाप्त हो चुका किन्तु तुम क्या अलाप रही हो?

सीता—वही पुरानी भैरवी।

मालती—तो क्या पुरानी भैरवीसे तुम्हें कुछ मिल गया या मिल

जायगा ? नहीं, तुम जानती हो कि यह संसार स्वयम दुख सुखका स्रोत है फिर वृथा चिन्ता करनेसे क्या फायदा ! यहां तो पलके पलमें क्या से क्या होजाता हैं ।

[गाना]

पलमें घनघोर घिरे नभमें, पलमें रवि रूप दिखावत है ।
पलमें धनवान धनहीन बने, पलमें सुखको दुख खावत है ॥
पलमें अपना, पलमें सपना, पलमें पुनि खेल रचावत है ।
पलके पलमें, पलको पलमें, कुछसे कुछ रूप बनावत है ॥

सीता—सत्य है, बहिन मालती ! सत्य है ।

वालमीकि—(प्रवेशकर) सत्य है तो फिर चिन्ताका परित्याग करो ।

सीता—गुरुदेव ! प्रणाम ।

वाल्मीकि—सुखी रहो पुत्री ! सुनो, जिस प्रकार गर्वसे लक्ष्मी का, बुढ़ापेसे बलका, आलस्यसे विद्याका, झूठसे व्यवहारका और क्रोधसे विचारका नाश हो जाता है उसी प्रकार रोनेसे धैर्य्यका, चिन्तासे मनकी निर्मलताका और कुढ़नेसे शरीरका नाश हो जाता हैं ।

सीता—गुरुदेव ! किन्तु इन व्याधियोंसे बचनेका उपाय क्या है ?

वाल्मीकि— शान्ति, केवल शान्ति । जैसे युक्तिवान मनुष्य मूर्ख

१४

को खुशामदसे, अत्याचारीको दीनतासे, विद्यावानको सद् बचनसे और साधुको सेवासे वश कर लेता है वैसे ही पुण्यात्मा सज्जन पुरुष मनकी चंचलताको, लोभवश वासनाओंको, शान्ति-धनसे वशकर लेता है।

शान्ती धनके बराबर और कोई धन नहीं;
यह वह धन है जिसके घटनेकी कोई उलझन नहीं।
शान्ती धन जिसके हिरदय कोशसे घटता नहीं;
उसका सौदा वासनाओंसे कभी पटता नहीं।

सीता—अहा! कैसा शान्तमय, मेघके समान शीतल उपदेश! अमृतके समान मधुर उपदेश, जिसके पान करते ही मानो हृदयकी जलन, चिन्ताथकन, भूख और प्यास सब दूर हो गयीं और ऐसा मालुम होता है कि जैसे आज मैं अपने दुर्बल हृदयमें बलका संचार पाती हूं। पिताजी! पिताजी!! मुझे अपनी चरण रज दीजिये।

सी
र्जा
र्स

वाल्मीकि—(पैरोंपर गिरी हुई सीताको देखकर) आह! कितनी भक्ति, कितनी श्रद्धा! पुत्री! तुम्हारा कल्याण हो। अहो अबतो कमनीय सुन्दरी सन्ध्या आँखोंके सामने नाच रही है, जिसके आगमन पर बन भूमि अपनी विशाल आंखें बिछा रही है। जाऊं, जाऊं, मैं भी सन्ध्यादेवीके आगमनको जाऊं। पुत्री मालती! तुम मेरे आचमनके लिये शीघ्र गंगाजल भर लाओ।

उ

मालती—जो आज्ञा पिताजी! (जाना)

सीता—प्रणाम पिताजी !

वालमीकिजी—पुत्री ! राम तुम्हारा कल्याण करें ।

"बैठत राम ही ऊठत राम ही, बोलत राम ही राम रह्यो है"

(प्रस्थान)

सीता— रामके कल्याण करनेसे मेरा कल्याण है;
यों तो है कल्याण पर कल्याण अन्तर्ध्यान है ।
दुख अगर है तो यही है रामकी सेवा न की;
ले रही है श्वास दुनियामें वृथा ही जानकी ।

(बच्चोंके रोनेकी आवाज़ सुन कर) **मेरे जीवन—सूर्यकी तेजस्वी किरणों ! प्रचण्ड न बनो, ठहरो ठहरो, मैं तुम्हारे आहारकी बढ़ती हुई ज्वालाको दूधसे शीतल बनाती हूं ।**

(सीता कुटियोंमें जाना चाहती है । नैपथ्यसे आवाज़ आती है जिसे सुन कर सीता वहीं रुक जाती है)

आवाज़— दाता सबका राम है, मोदी सब संसार ।
जापर हुण्डी भेज दी, सो ही खरचन हार ॥

सीता राम ! सीता राम !! सीता राम !!!

सीता—यह मैंने क्या सुना "सीता राम" !

रामधन— योगीके भेसमें प्रवेश कर) **सीता राम । सीता राम ।**

सीता—रामके साथ सीताका नाम लेनेवाले तुम कौन ?

रामधन—एक अनाथ भिखारी । सीताराम ! सीताराम !!

सीता—(आह भरकर)

रामको भाती नहीं भक्तोंको मुझसे प्यार है;
रामने छोड़ा मुझे संसार दावेदार है ।
पती-सेवासे मिली पदवी यह मेरे नामको;
याद करते हैं सभी पहले मुझे फिर रामको ।

रामधन—देवी ! मेरी आत्मा भूखसे व्याकुल हो रही है । यदि कुछ खानेको दे सकती हो तो दो वर्नः जवाब दो । सीताराम ! सीताराम !!

सीता—"सीताराम" है इसके उच्चारणसे राम नामकी मधुर ध्वनि मेरे कानोंमें अमृत रस क्यों नहीं ढ़लाती ? राम नामकी झंकार मेरे प्राणोंमें आकर्षण शक्ति क्यों नहीं दौड़ाती ? जिस प्रकार पंचवटीमें रावणने भिखारीका रूप बना मुझसे भिक्षा मांग छल किया था, क्या उसी प्रकार अब भी किसी निश्चरकी दुरात्मा मुझसे छल करनेके लिये इस रूपमें उपस्थित हुई ? नहीं; नहीं । नहीं, नहीं ।

आत्मा कहती है मुझसे भेस धारी है कोई;
यह न सज्जन है न साधू, पापाचारी है कोई ।
पापाचारी हो या आचारी पर अब महमान है;
इस समय मेरे लिये प्रत्यक्ष ही भगवान है ।

राम—देवी ! तो क्या मुझे भिक्षा न मिलेगी ? क्या मैं निराश ही जाऊँगा ?

सीता—ठहरो ठहरो अतिथि देवता ! मैं आपके लिये गोरस

सी
र्ज
र्स
उ

लाती हूं। जो मेरे नन्हें दूधाधारी बालकोंका भाग है वह आपको पिलाती हूं। जिस प्रकार वृक्ष गिरनेसे पहले अपनी छाया ,काटनेवालेके सिरपरसे नहीं हटाता, उसी प्रकार मैं भी अपने पुत्रस्नेह, पुत्रप्रेमरूपी वृक्षको काटनेवाले इस अतिथिसे अपने सत्कारकी छाया न हटाउँगी,—

प्राणधन बच्चोंका जो लग जाय पर उपकारमें;
तो लगा दूंगी खुशीसे गैरके उद्धारमें।
सर्व सुख भूलूंगी मैं संसारके संसारमें;
पर न डोलेगा कदम महमानके सत्कारमें।

रामधन—अहा! धन्य हो देवी! तुम धर्मकी अटल ध्वजा हो; स्तीत्वकी स्वर्णमई प्रभा हो; कर्त्तव्यकी उज्ज्वल आभा हो; भारतकी—भारतके जीवनकी—अमर शोभा हो। तुमको कोटि कोटि धन्य हो। किन्तु माता! मैं निरपराध हूं। क्षमा, क्षमा मैं इस समय प्रतिज्ञाकी रणभूमिमें कर्त्तव्यपर विजय पाने आया हूं। माता! मेरी सहायता करना।

मुझे मुक्ती मिलेगी घोर अत्याचार करनेसे;
हुआ उद्धार था रावणका ज्यों सीताके हरनेसे।
मैं रावण बनके आया हूं मेरा उद्धार कर देना;
मेरी नैय्याको भवसागरसे माता! पारकर देना।

उठो, उठो, मेरे उद्धारके जीते जागते खिलोनो! उठो।

जल समाधी लगाओ, मेरे जीवनको पाप कर्मसे भयं-
कर बनाओ, मेरे काम आओ।

(बच्चोंको नदीमें फैंककर भाग जाना)

सीता— (दूध ला कर) लो अतिथि देवता ! इसे भोग लगाओ।
हैं ! वह कहां गये ? बच्चो ! अधीर न हो। हैं हैं मेरे
बालक (दूध हाथसे गिर पड़ता है) ओ संसारके पालक !
सीताके सहाई !! प्रिय रघुराई !!! कहां हो ? कहां हो ?
गये, वह भी गये और यह भी गये। नहीं नहीं यहीं होंगे।
देखूं देखूं। कहीं नहीं। वह कहां जा सकते हैं ? यहीं
होंगे। फिर कहां हैं ? भूमाता ! बता, बता, मेरे लाल
कहां हैं ? आह मेरा लव, मेरा कुश। हैं तुम चुप हो ?
वसुन्धरे ! यह चुप्पी मुझे नहीं भाती। ला मेरे
बच्चे ला। बरसों धरतीकी अंधेरी गोदीमें रही; संसारमें
आई तो बनवास मिला; बनवासमें पति वियोगका वज्र-
पात हुआ;जीवनकी दोपहर आई तो पतिने त्याग दिया।
नहीं है, मेरी प्रारब्धमें सुख सौभाग्यकी रेखा ही नहीं है।

[गाना]

प्रारब्ध ने पैदा किया मुझको रुलानेके लिये।
विरहा अनल फैंका नया मेरे जलानेके लिये॥
विपदा यदी उत्पन्न हुई तो मेरे ही कारण हुई।
वर्ना: पड़ी थी उसको क्या दुनियामें आनेके लिये॥

सी
र्इ
र्स
उ

स्वामीके चरणोंमें रहे जो नारि वह ही धन्य है ।
आदर्श बनता है तभी जीवन ज़माने के लिये ।।
दुर्भाग्य ने मुझको चुना सबसे अभागन देखकर ।
जीवन मिला "शैदा" मगर निश्फल बिताने के लिये ।।

(अकस्मात गंगासे देवी गंगाका सीताके दोनों बच्चोंको गोदीमें लिये हुए दर्शन देना ।)

गंगा—सावधान जनक-नन्दिनी मनोरंजनी ! सावधान । ले अपने बच्चे ।

सीता—क्या मेरे बच्चे ?

रामधन—(उस पार खड़े होकर) हैं क्या सीताके बच्चे बच गये !

कर्म—(प्रवेशकर) हां हां बच गये । तूने डुबाया, गंगा-माईने तिराया अर्थात् यहां भी मैंने अपने कर्त्तव्यको निभाया । क्यों कुछ आपके......

सीता—मेरा लव ! मेरा कुश

गंगा—(गंगामाईका सीताको बच्चे देते हुये)

जीवनमें जो मुझपर श्रद्धा लायें वह मुक्ती पाते हैं,
मरकर भी जो इस गोदमें आ जायें वह भी तर जाते हैं ।

सीता—धन्य हो श्रीभागीरथी ! धन्य हो ।

(टेबलोपर परदेका गिरना)

तीसरा दृश्य।

[स्थान--जंगल]

कर्म— (प्रवेशकर) **रामधन लकड़हारेने सीताके बच्चोंको डुबाया; भागीरथीने बचाया अर्थात् वहां भी मैंने अपना कर्त्तव्य निभाया; शूर्पनखाको मूर्ख बनाया। क्यों कुछ आपके···**

[गाना]

धन कारीगर करतारको
नर पुतला जिसने बनाया।
पंच तत्वका ताना बाना, बुनने बैठा ब्रह्म स्याना,
धड़की श्वासका आना जाना, मिलावे जीवन तारको।
आपेमें आप समाया........धन० ॥
जिस दिन पहने जीवन चोला, बन जाये फिर आला भोला,
जिसने शुभकर्मोंको मोला, पहुँचे वही भव पारको।
अचरज खेल रचाया......धन० ॥
जिस दिन थाक्यो बुनने वाला, उस दिन हो गहरा अंध्याला,
बादल बरसें जैसे ज्वाला, भस्म करे संसारको।
नहीं भेद किसी ने पाया........धन० ॥

(प्रस्थान)

सूपनखा—(प्रवेशकर) **लव-कुशको किसने बचाया ?**

सी
र्डा
र्स
उ

रामधन—गंगा ने ।

सूर्प०—क्या वह गंगा जो विष्णुके चरणकी धोवन बनी ?

रामधन –हां ।

सूर्प०—क्या वह गंगा जो ब्रह्माके कमण्डलमें बरसों सड़ती रही ?

रामधन—जी हां ।

सूर्प०—क्या वह गंगा जो शंकरकी जटाओंमें कैद रही ?

रामधन—हां हां वही गंगा, वही गंगा ।

सूर्प०– गंगे ! गंगे !

तुझे अब तक नहीं पाला पड़ा है मेरी मायासे;
सिवाय थम्भ भूपर नभ खड़ा है मेरी मायासे ।
तेरी धारा पै अब मैं वैरकी ज्वाला नचाऊंगी;
करूंगी नष्ट तेरा, तुझको जड़से ही मिटाऊंगी ।

रामधन—निश्चय, धर्ममाता ! निश्चय ।

यद्यपी जग तारणी दुनियामें उसका नाम है ;
तो हमारा भी तो जग सँहार करना काम है ।
दण्ड देना चाहिये गंगाको उसके कर्म का;
बोल बाला जगतमें होगा तभी निज़ धर्म का ।

आवाज़—(नेपथ्यमें) पानी,:पानी ।

सूर्प०—(चौंककर) ऐसे घोर बनमें प्राणी ! कौन ? कौन ?
(पहचानकर) हैं ! क्याराम और लक्ष्मण । मेरे जन्मके दुश्मन । जागृत अवस्था है या स्वप्न ।

रामधन—कौन रघुनन्दन ?. सौभाग्यवश राम दर्शन ।

शूर्प०—नहीं 'नहीं 'वही, मूर्तिमान वही । हे उमा भवानो !। क्या

मेरी कामना पूर्ण हुई ? हां हां पूर्ण हुई। प्रबल हो वैर शक्ति ! प्रबल हो। हां हां प्रबल है, प्रबल है।

वैर की शक्ती प्रबल है यद्यपी बुढ़िया हूं मैं ;
अपने शत्रुके लिये वह ज़हरकी पुडिया हूं मै।
जिसके छूते ही छुपे सूरज, अन्धेरी रात हो ;
देखकर जिसको अमावसका अन्धेरा मात हो।

रामधन—आहा धन्य हो, धर्म माता ! धन्य हो

आवाज़—(नैपथ्यमें)

नज़र आता नहीं वनमे कहीं भी चिन्ह पानीका।
हुआ है क्या समय पूरा मेरी अब जिन्दगानीका

पानी ! पानी !!

सी
र्ता
र्स

शूर्प०—हाथमें हैं, समय और शत्रु दोनों हाथमें हैं। लाभ उठाऊं और हंसते खेलते ही झगड़ा चुकाऊं।

वैरकी शक्ती नयी होगी मेरी हर चाल में ;
जो न होगी तीरमें, भालेमें और भूचाल में।
क्रोधका विष डालकर पानी पिलाऊँगी उन्हें;
कालकी लोरी यहीं बैठी सुनाऊँगी उन्हें।

बेटा !

रामधन—धर्ममाता।

उ

शूर्प०—जाओ जल ले आओ, किन्तु दो पात्रोंमें लाना।

रामधन—जो आज्ञा।

आवाज़—धैर्य्य, लक्ष्मण ! धैर्य्य। पानी ! पानी !!

शूर्प०—शत्रुओंको वैरका प्रतिदान देनेके लिये ;
वैरको अवसर मिला है वैर लेनेके लिये ।
आ गया किस्मत से शुभ अवसर यह मेरे हाथ में ;
अब कहां जायेंगे वह बैठी हूं जिनकी घात में।

रामधन—(प्रवेशकर) यह लीजिये ।

शूर्प०—(जल लेकर) आ गया, मेरे हाथोंकी राजधानीमें आ गया
(जल मिलाना, आगका शोलानिकालना)

रामधन—है शीतल जल या अनल !

शूर्प०—हां हां अनल ।

रघुकुलको जलायेगा यही पानी अनल बन कर ;
मेरा बल शत्रुओंसे वैर लेगा अब प्रबल बनकर ।
किया निर्वंश जिसने मेरे भाई प्राण प्यारे को ;
डुबाऊँगीमैं इस जलमें उसी रघुकुलके तारे को ।

राम और लक्ष्मणका प्रवेश

लक्ष्मण—जल, हाय जल ।

यदी जल न मिलेगा तो समझ लो मौत ही आई ;
हुआ है कण्ठ मेरा सुखकर कांटा प्रिय भाई ।

राम—धैर्य्य भाई लक्ष्मण ! तनिक और धैर्य्य रखो मैंने सिपाहियोंको जलकी टोहमें भेजा है। अब वह आया ही चाहते हैं।

शूर्प०— अयुध्या नरेश ! आह मेरे-जिन्दा क्लेश ! अधीर न हो। लो अपने भाईको जल पिलाओ।

रामधान—जल या हलाहल।

शूर्प—चुप कहींका जाहिल । हां हां लो बड़ा शीतल जल, बड़ा ठण्डा जल ।

राम—लाओ लाओ देवी ! मैं इस महान उपकारका, जीवन सत्कारका......(देखकर) कौन ? कौन ? लंकाधीश रावणकी बहिन शूर्पनखा ! वैरकी जीती जागती समाध ! शत्रुताकी चैतन्य जड़, जिसको भाई लक्ष्मणने कुरूपा बनाया; जिसके द्वारा सीता हरण हुआ । जिसके हेतु रावण निर्वंश हुआ । अब वह राक्षसी शत्रुताके बदले उपकार दिखाती है, हमारी पीठमें छुरी भोंकनेके बदले प्रिय लक्ष्मणकी प्राण रक्षाके लिये जल पिलाती है । धन्य हो देवी ! धन्य हो,

तुझे अब मैंने बुद्धीकी कसौटी पर परेखा है ;
दयालु आत्मा जो राक्षसी के तनमें देखा है ।
मैं समझा अर्थ परस्वारथ का समझा मर्म जीवन का ;
मुझे बतला दिया है आज तूने धर्म जीवन का ।

(रामका शूर्पनखाके पांवपर गिर पड़ना)

शूर्प०—है है यह कैसी विचित्र घटना ! सूर्यवंशी तिलकधारी सीस मेरे चरणोंमें ! हो चुका, मेरा वैर हो चुका ।

लक्ष्मण—लाओ लाओ मुझे जल पिलाओ, मेरी जिह्वा कण्ठमें उतर रही है ।

शूर्प०—न पिलाऊंगी लक्ष्मण ! यह जल तुझे न पिलाऊंगी ।

राम—नहीं नहीं तुझे पिलाना होगा, इसके प्राणोंको बचाना होगा ।

सी
र्ग
र्स
उ

शूर्प०—राम ! यह जल नहीं हलाहल है।

राम—क्या कहा हलाहल ?

लक्ष्मण—जल हाय ! जल ।

राम—शूर्पनेखा ! रामसे छल न कर, दूधको हलाहल न बता।

शूर्प०—क्या कहा दूध ?

राम—देख, देख और हृदय-चक्षुसे देख ।

शूर्प०—(देखकर और थोड़ासा पृथ्वीपर गिराकर) हैं यह क्या ? हलाहलकी जगह दूध ।

राम—हां हां दूध,—

अभी तो प्रेम ने गोरस बनाया विषभरे जलको ;
बना सकता है सच्चा प्रेम अमृत-रस हलाहल को ।
बने जिसदम खेवैया प्रेम, तो उद्धार होता है ; ।
अगर डुबता भी हो बेड़ा तो पलमें पार होता है ।

लो, लो, वत्स ! जल पियो (लक्ष्मणको देना)

लक्ष्मण—लाओ, लाओ भैया ! लाओ (पीकर) आह ! जानमें जान आ गई मानो; सूखे हृदय—कंवल पर अमृत वृष्टि हुई कौन ? कौन ? शूर्पनखा राक्षसी ।

राम—नहीं तुम्हारी प्राण रक्षा करनेवाली देवी ।

शूर्प०—
लक्ष्मण—
रामधन— } देवी !

राम—हां हां देवी,—

१४

प्रेम अमृत मिल गया है इसके शुद्ध व्यवहार से ;
दैत्य पलमें देवता हो प्रेमके संचार से।

रामधन—अहा! कैसा आश्चर्यमयचमत्कार! वरसोंकी शत्रुता-के बदले श्वास भरके प्रेमका यह अमूल्य पुरस्कार। धन्यहो दयानिधे! धन्य हो।

शूर्प०—क्षमा नाथ! क्षमा, मैंने आज आपका असली स्वरूप देखा। नमस्कार, भगवन! नमस्कार।

राम—आओ, दोनों आत्मानन्द सागरमें जल समाधी लगाओ, मुक्ति पाओ।

रामधन—
शूर्पनखा— } जै प्रभु जै प्रभु !!
राम—

सी
र्डा
र्स

गाना

जा घट सूना प्रेमसे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहारकी, सांस लेत बिन प्राण ॥
प्रेम ही जीवनका आधार,
प्रेम बिन सूना सब संसार।
प्रेम भीलनीनें जब कीनो, जूठे बेर मैंने चख लीनो।
जात पातका भरम न कीनो, दीनो मुक्ति द्वार—प्रेम०

उ

प्रेम किओ सुग्रीव ने, हनुमन्त ने सेव।
अंगद अरु नल नीलसे, बने दाससे देव ॥

प्रेम विभीषण ने जब कीनो, लंकाकी रजधानी लीनो,
गुण गावत सत, रज, तम तीनो, मिला तारसे तार....

आई आंधी प्रेमकी, तिनका उड़ा अकास ।
तिनकेसे तिनका मिला तिनका तिनके पास ॥

कहां अहिल्या भसम रमाई, कहां धुनि गनिका ने लाइ,
एक बार जो मोहे बुलावे, जाऊं मैं सौ सौ बार...प्रेम
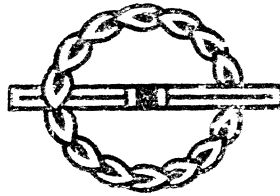
चौथा दृश्य।

स्थान सूद्रकाश्रम।

[सूद्र समाधिस्थ बैठा है,]

मृणालिनी—दोपहर दिन व्यतीत हो गया और प्राणवल्लभ अब-
तक समाधिस्थ हैं।

शम्भुक०—ओम शान्ति, शान्ति, शान्ति।

मृणा०—आर्यपुत्र ! नमस्कार।

सम्भुक—आर्ये ! पति सेवा सफल हो।

मृणा०—नाथ ! क्या आजसे प्राणायामका समय बढ़ा दिया ?

शम्भुक—नहीं भद्रे ! किन्तु आज तुम कुछ नयी घटना देखोगी।

मृण०—नयी घटना। कैसी नयी घटना ?

शम्भुक—जीवन सामग्री समाप्त होनेवाली है।

मृणा०—वह तो एक दिन अवश्य ही समाप्त होगी। फिर चिन्ता
काहे की ? किन्तु किसके जीवनकी सामग्री ?

शम्भुक—मेरे जीवनकी।

मृणा०—तो क्या आज ही चोला बदलियेगा ?

शम्भुक—चिन्ह तो कुछ ऐसे ही नज़र आते हैं

मृणा०—तो फिर बदलिये, मैं तैयार हूं।

शम्भुक—तुम तैयार हो ?

मृणा०—हां नाथ ! मैं, आपकी मृणालिनी।

धनुषकी नाईं है मेरा जीवन और आप उसके हैं बाणधारी।
यह जिस्म चोला है आपका ही और आप इसके है प्राणधारी॥
जहां में पत्नी की प्राण--नैय्या, पती खेवैया डुबाये तारे।
यदी खेवैया ही डूब जाये तो कौन नैय्या को पार उतारे॥

शम्भुक—धन्य हो, आदर्श बाला! धन्य हो।

(राम और लक्ष्मणका चार सैनकोंके साथ प्रवेश करना)

राम—ऋषिवरके चरणतलमें राम प्रणाम करता है।

शम्भुक राम—कौन अयुध्या नरेश?

लक्ष्मण—जी हां सुरेश!

शम्भुक—महाराज! मैं सुरेश नहीं हूं।

लक्ष्मण—तो फिर तुम कौन हो?

शम्भुक—भारत सम्राट रामका सेवक। अहो भाग्य! पधारिये महाराज पधारिये अपनी चरण रजसे मेरी कुटिको पवित्र कीजिये। मेरा अतिथि सत्कार ग्रहण कीजिये। (मृणालिनीसे) मृणालिनी! तुम कुटीमें जाओ और अतिथि सत्कारके लिये कुछ फल ले आओ।

मृण०—जो आज्ञा। (जाना)

राम—किन्तु विना परिचय लिये राम किसीका अतिथि सत्कार ग्रहण नहीं करता।

शम्भुक—नाथ! संकोच मत कीजिये। मैं शम्भुक नामी शुद्रक राजा हूं, राज भोगको छोड़कर अब हरिभजनको अपने जीवनका मुकुट और इस वन-भूमिको अपनी राजधानी समझता हूं।

राम—क्या शैलव-पति शम्भुक—शुद्रक राजा ?

शम्भुक—जी हां, वही आपका सेवक—आपका दास। किन्तु रघुकुल भूषण ! इस तौर चकित होनेका कारण ?

लक्ष्मण—शुद्रक राजा तो हो चुका। अब इस सम्बन्धमें तुम एक शब्द भी नहीं बोल सकते। (हटकर एक तरफ खड़े हो जाना)

राम—क्षमा करना शुद्रक राज ! राम तुम्हारा अतिथि सत्कार स्वीकार नहीं कर सकता।

शम्भूक—कारण ?

राम—यही कि इस समय मैं तुम्हें शत्रुभावसे दन्ड देने आया हूं।

शम्भुक—किन्तु भारत सम्राट ! क्या शम्भुक अपना अपराध जान सकता है ?

राम—अपराध ! घोर अपराध।

शम्भुक—उस अपराधका आकार ?

राम—नीति मर्य्यादाका तिरस्कार, हिन्दू शास्त्र तिरस्कार।

शम्भुक—धर्मावतार मैं ! और शास्त्रका तिरस्कार ? असम्भव।

हरी सुमरनको, अध्ययन को केवल प्यार करता हूं।
वचन, मन कर्मसे मैं शास्त्रका सत्कार करता हूं॥
समझते हो जो उपराधी, मुझे शुभ कर्म करने से।
तो दो शिक्षा उपस्थित हूं मैं कब डरता हूं मरने से॥

राम—शैलव पति ! क्या तुम नहीं जानते कि शास्त्रके अध्ययनका शूद्रको अधिकार नहीं।

सी
उ
स
उ

शम्भुक—इससे मुझे इनकार नहीं, किन्तु क्या महात्मा राम इसे उचित समझते हैं ?

राम—उचित हो या अनुचित—शास्त्र आज्ञाका पालन करना रामका जीवन कर्त्तव्य है। क्या तुम यह चाहते हो कि मैं ब्रह्महत्याका पाप अपने सरपर ले लूं, प्रजा उन्नति, प्रजा रक्षाका विचार छोड़ दूं ?

शम्भु—हरगिज़ नहीं। प्रजा उन्नति करना राजाका राज्य-नियम है।

राम—जानते हो तुमने उसी राज्य नियमको तोड़ा है, इस लिये तुम दण्डके अधिकारी हो।

शम्भुक—दण्डके अधिकारी हो ? महात्मा राम ! मैंने नर-हत्या नहीं की, मैंने किसीके धनपर डाका नहीं डाला, मैंने पर स्त्रीसे व्यभिचार नहीं किया, मैंने राज द्रोही बनकर देशमें उपद्रव नहीं किया—फिर आप मुझे किस तरह अपराधी समझते हैं ? क्या आप इसे अपराध समझते हैं कि मैंने धर्म शास्त्र और उपनिषद पढ़कर अपनी मानसिक वृत्तिको उस अलख, अनादि, सर्वज्ञ, निरंजन, नित्य, अविनाशी भगवान्‌की चरण सेवामें क्यों लगाया क्या शास्त्र पढ़कर हरि नाम जपना अपराध है ?

राम—हां हां महा अपराध है।

शम्भुक—महा अपराध है ? आह ! यह कैसा आश्चर्य जनक नाद है।

राम—आश्चर्य जनक नाद नहीं, ब्रह्मणजातिकी दुख भरी फर्याद है।

शम्भुक—तो क्या ब्राह्मण जातिका भगवानपर जड्डी हक है और शुद्र जातिका नहीं, अथवा ब्र ह्मण जातिका भगवान वैदी है और शुद्रजातिका उसपर कोई अधिकार नहीं। मालूम होता है शायद ब्रह्माने केवल ब्राह्मण जातिको ही आंख नाक, कान जिह्वा आदि इन्द्रियां दी है और शुद्र जातिको नहीं।

राम—नहीं सबको एक समान दी हैं।

शम्भुक—तो क्या ब्राह्मणका शरीर सोने और कंचनसे बना है और शुद्रकका कीचड़ और मिट्टीसे ?

राम—नहीं प्रत्येक मानवी शरीर पंचतत्वका परिणाम है।

शम्भुक—और जीवात्मा ?

राम—प्रत्येक शरीरमें एक ही जीवात्माका विश्राम है।

शम्भुक—तो फिर बाकी क्या रहा ? जातीय भेद। सो वह तो मनुष्यका रची हुई सृष्टि है न कि प्रकृतिकी।

प्रकृती की गोदमें सब जीव पलते हैं यहां।
श्वासके उद्यानमें एक साथ फलते हैं यहां॥
ब्राह्मण हो या कि क्षत्री वैश्य या शुद्र हो।
प्राणधारी एकही सांचेमें ढलते हैं यहां॥

लक्ष्मण—आहा ! आकाशकी तरह स्थिर प्रमाण ! हिमाचलकी तरह अटल प्रमाण !

जिसके हर अक्षरसे निकले आर्य शिक्षाकी ध्वनी।
शुद्र इसको कौन कहता है यह ब्राह्मण शिरोमणी॥
हो विवश पलमें मनु इसके मृदु उपदेश से।
फिर तो जाती की प्रथा उठजाये भारत देश से॥

राम—लक्ष्मण! तुम सत्य कहते हो, किन्तु धर्मशास्त्रका उल्लंघन करना, नीति मर्यादाको तुच्छ समझना वह महा अपराध है जिसका दन्ड केवल मृत्यु दन्ड है।

शम्भुक—तो फिर मैं आप की सेवामें उपस्थित हूं, दीजिए सहर्ष प्राण दन्ड दीजिए—

राम—शुद्रकराज! तो फिर तैयार हो जाओ?

शम्भुक—शुद्रकके महाराज! तैयार हूं

राम—आह राज्य भक्ति-राज्य भक्ति—
पुन्य जीवनकी कमाई-सब गँवाई, राज्य भक्तीके लिए
बन गया रघुवंशमें रघुवर कसाई, राज्य भक्तीके लिए
(म्यानसे तलवार निकालर शुद्रकपर वार करना चाहना मृणालिनी फल लेकर आना।)

मृणालिनी (फल झोलीसे गिर पड़ते हैं) ठहरो—निर्ममता-ठहरो।
क्या दिवाला हो गया मनुष्यत्व रूपी कोशका।
कर रहे हो नाश जो मेरे पती निर्दोषका॥
कौन हो मानुष्य हो या राक्षस हो यक्ष हो।
छोड़ दो मानुष्य हत्या तुम अगर मानुष्य हो॥

राम—देवी! मैं मनुष्य नहीं हूं, मनुष्य नहीं हूं।

मृणा०—तो फिर कौन हो?

१४

राम—राक्षस, मनुष्य आहारी, अघोरी।

चल रही है रुधिर लू हत्याकी भेजेमें मेरे।
सर्प बिच्छू ने बनाया घर कलेजेमें मेरे॥
जिससे मेरा बाहुबल मृत्यु आहोरी बन गया।
भर दिया रग रगमें विष, रघुवर अघोरी बन गया॥

मृणा०—क्या कहा? क्या आर्य्यनीति, सनातन मर्य्यादाका अवतार; और नर हत्याका रोज़गार। क्षमा, राम! तुम क्षमा की सृष्टि हो, मर्य्यादाका उलंघन तुम करो। रामका दहना हाथ प्रजा रक्षाके लिये, दान पुन्यके लिये बना है न कि नर हत्याके लिये।

झोली मेरी भर दिजिये भगवन क्षमाके दान से।
क्योंकि मेरे जीवनकी शोभा है पतीके प्राण से॥

सी
र्श
र्स

शम्भूक—सावधान, मृणालिनी! राज्यकार्य्य निर्विघ्न समाप्त होनेदो। राज्य सम्बन्धमें हाथ मत डालो।

मृणा०—किन्तु नाथ! स्त्री हृदयमें इतना साहस कहां कि वह अपने हाथों अपने भालका विन्दु उतारदे; अपनी मांगका सिन्दूर लुटा दे; अपनी आंखोंके सामने पतिदेवकी तड़पती हुई लाश देख सके।

शम्भूक—शान्त, मृणालिनी! शान्त! शान्त चित्त होकर मेरी मृत्युका कौतक देखो। सुनो, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं।

उ

मृणा०—पति आज्ञा? मैं पति आज्ञाका पालन करूंगी। दो राम! मेरे जीवनको प्राणदण्ड दो। मैं इन्हीं नीरस

आंखोंसे देखूंगी। बन्द कर दो, मेरे जीवन सङ्गीतकी मूर्च्छना बन्द कर दो। बुझा दो, बुझा दो, राम! क्या देखते हो। का-पुरुष! मेरी प्रकाशमयी ज्योतिको बुझा दो। बुझा दो।

ना कि प्रलयका बदलियां छांय अभी आकाशपर।
तुम डाल दो मृत्युका परदा इस अचल अविनाश पर॥

राम—राज्यधिकार। राज्यधिकार!!

लक्ष्मण—कठिन सार! कठिन व्यवहार!

शम्भुक—जीवन उद्धार! नमस्कार। राम! अंतिम नमस्कार।

ऋषि—उपकार, उपकार। मेरा पुत्र! मेरा जीवनाधार। राम राज्यकी जय जय कार।

राम—आह! ऐसे घोर अंधकारमें यह कैसी प्रकाशमयी झंकार (दिव्यदृष्टिसे देखना) प्रजा उद्धार, प्रजा उद्धार!

मृणा०—अच्छा हुआ। जो मुझे दूसरा चोला बदलनेका अवसर मिला। जाओ, प्राण जाओ, अपने तपोबलसे मुक्ति धाम पाओ।

चल गया है वार मेरे प्राण पर अब काल का।
लुट गया सिन्दूर बिन्दु आज मेरे भाल का॥
दुख रंडापेका न पर झेलुंगी मैं ब्रह्मणाण्ड में।
एक और हत्या बढ़ा दूंगी मैं हत्या काण्डमें॥

चल मृणालिनी! चल। प्राणनाथ तुझे बुला रहे हैं। आई प्राणनाथ! आई। (सीनेमें छूरी भोंककर मर जाना)

१४

राम—दूसरी हत्या, दूसरी हत्या। रक्षा, प्रभु! रक्षा।

मृणालिनी—(दम तोड़ते हुए) राम! राम!! तुम्हारा प्रकाश पूर्ण विलास भवन तुम्हें सांपके बिलकी तरह नज़र आये। राम! तुम्हारी पुष्प शय्याका प्रति पुष्प तुम्हें बिच्छु बनकर डसे।

राम—कुछ और?

मृणा०—राम! अंतिम श्वासतक तुम अपने शून्य ललाटपर सुख सौभाग्यकी रेखा न पाओ।

राम—और! और?

मृणा०—राम! स्त्री आलिङ्गन तुम्हारे लिये छुराबन जाये।

राम— और देवी! और?

मृणा०—और राम, राम, राम (मर जाना)

राम—देवी! तुम्हारा श्राप पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो। साक्षी रहना, देवताओं! साक्षी रहना। देवीका श्राप पूर्ण करना।

लक्ष्मण—आह! कैसा कठिन व्रत!

(परदेका गिरना)

सी
र्ड
र्स

उ

पांचवां दृश्य

[स्थान—वाल्मीकि आश्रम ।]

(लव और कुशका धनुरभ्यास करते नजर आना।)

गाना

लव-कुशः—

प्रति बान कमानसे यों निकले, ज्यों स्वाहासे ज्वाला निकले।
बिजलीकी चमकको मातकरे, बरसे तो दिनको रात करे,
मम बानकी चाल निराली है, मानो भूचालमें ढाली है।
चिल्लेसे निकले सना नना सन, जैसे गरजे घन घना नना घन,
क्या बात जो लक्ष्य मेरा चूके, यह बचन हैं सब केवल मुँहके।
क्या दिखलाऊं? हां दिखलाओ, वह लक्ष्यको मैंने भक्ष्य किया,
वह चूक गया, देखो इस ओर कि ज्यों बिलसे काला निकले।

लव—भैय्या कुश! तो फिर पैंतरा ले कर खड़े हो जाओ।

चिल्ले पर तीर चढ़ाओ, अपनी निपुणता दिखाओ।

कुश—तो फिर आओ, तुम भी सामने खड़े हो जाओ।

मैं तुम्हें दिखलाऊं तुम मुझको दिखाओ पैंतरा।

लव— साफ क्यों कहते नहीं मुझको सिखाओ पैंतरा॥

कुश— पैंतरा लेते हो क्या तुम मुझसे अच्छा पैंतरा।

लव— सीखते हो और फिर करते हो मुझसे पैंतरा॥

कुश—न न मुझे तुम्हारे पैंतरा-बेंतरा देखने की कुछ ज़रूरत नहीं

लव—नहीं ज़रूरत तो पहले तुम्हीं दिखाओ।

कुश—हां हां, देखो (पैंतरा दिखाते हुये) लो देखो।

लव—बस ले चुके ? इसी पैंतरा पर इतना इतराते थे ? बड़ी बड़ी बातें बनाते थे ! ग़ल्त, बिल्कुल ग़ल्त सिरसे पांव तक ग़ल्त। लो अब इधर देखो। (दिखाना)

कुश—ऊंह मैं भी तो यही पैंतरा लेता हूं ! देखो तो सही। (दिखाना)

लव—ऊंहूं आंखोंको अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हें समझा तो नहीं सकता, मगर दिखा सकता हूं। फिर देखो, जिस बातकी त्रुटि अपने पैंतरेमें देखो उसे सुधार लो।

कुश...मुझे तो कुछ त्रुटि नज़र नहीं आती।

लव—क्यों वृथा हठ करते हो ! अच्छा योंही खड़े रहो। गुरुजी आते ही होंगे। वही तुम्हीं सिखायेंगे। लो वह गुरुदेव आ भी गये। (वाल्मीकिका प्रवेश)

लव-कुश—प्रणाम गुरूदेव !

वाल्मीकि—धनुर्विद्या सफल हो। (लवकी ओर देखकर) लव ! तुमने तो आज:वह अलौकिक पैंतरा लिया है, यदि स्वर्गसे राजा नल भी इस पैंतरे को देख पावें, तो वह भी अपनी धनुर्विद्या भूल जायों।

तुम्हारे पैंतरेमें कुछ निराली लोच आयी है।
यही कारण है जो इतनी मेरे हिरदयको भाई है॥

सी
र्डा
र्स
उ

जो लवमें लोच है, अबतक नहीं वह कुशमें आई है।
तुझे क्या हो गया दब्बू! यह तेरा ही तो भाई है॥

बाहु को युं रक्खो (दिखाकर) इधर देखो, पहले पैरों को यों धरती पर जमाओ, फिर धनुषकी प्रत्यचा को ज़ोरसे तानकर सीने तक ले आओ। ग्रीवा युं रहे, पश्चात लक्ष्य बांधो, फिर क्या मजाल जो निशाना चुक जाये।

कुश—गुरुदेव! जो आज्ञा। (पेतंरा लेकर दिखाना)

बालमीकि—बहुत अच्छे। बहुत अच्छे। कुश! आज तो तुमने लड्डू की तरह धनुर्शिक्षा को हड़प कर लिया। क्यों न हो आखिर राम...अस्तु। हां सच लव-कुश! आज मैं एक जिन्दा लक्ष्य तुम्हारे बाणोंका स्वागत मनानेके लिये अपने साथ लाया हूं।

लव—वह लक्ष्य कहां है गुरुदेव!

बालमीकि—बुलाता हूं। शतानन्द! शतानन्द!!

शतानन्द—(प्रवेश कर) आज्ञा गुरुदेव!

लव—हैं! क्या शतानन्द भंगड़!

बालमीकि—शतानन्द! आखें बन्द करके वहीं डटकर खड़े हो जाओ। आज लव कुश तुम्हारा चित्र उतारेंगे।

शतानन्द—जो आज्ञा।

बालमीकि—यही वह तुम्हारा लक्ष्य है। सुनो, लक्ष्य इसका शरीर होगा किन्तु इतना याद रहे, कि बाण शरीर को न लगें, बल्कि शरीरको चारों ओर से घेर लें।

बान्धो सुरतमें लक्ष्य तुम इसके शरीर को ;
छोड़ो मगर इस युक्तिसे चिल्लेसे तीरको।
जिससे बने वायुमें घर लव—कुश के तीर का ;
तीरोंसे चित्र खींचदो इसके शरीर का।

लव-कुश—जो आज्ञा। (गुरुचरणको स्पर्श कर आरम्भ करना)

वाल्मीकि—सफल हो, धनुर्विद्या सफल हो—

गाना

पूर्ण धर्नुविद्या हुई–हुआ पूर्ण अभ्यास
यह ही मम आशीश है- हो शत्रुन का नाश

लव-कुश—गुरु चरनन की रजसे बाहु बलमे बलका संचार हुआ
हम और हमारे धनुषवाणका दुन्यामें उद्धार हुआ—

सी वाल्मीकि--रिपुदलको पलमें पराजय करो-भारतमें जुगजुगराज्यकरो

उ लघ-कुश—गुरु वाक्य विफल होगा न कभी-

र्स गुरु वाक्यको मानें अमर सभी

वाल्मीकि—पाया है इतना तेज तभी-
वही तेज गलेका हार हुआ—

लव-कुश गुरु वाणी ही-गंगाजल है-
जो अमृत से भी उज्ज्वल है
उ इस अमृत को जो पान करें—
वह जीते जी भव पार हुआ

छठाँ दृश्य

राजभवन

राम—(उदास खड़े हैं) राजत्व, राजत्व, एक ओर राजत्व मुंह फाड़े विकराल और भैरव मूर्ति बनाये मुझे निगलना चाहता है, और दूसरी ओर, अंतःकरणमें निरपराधनि, सती साध्वी, सीताके वियोगका अपार दुख सागर उमड़ रहा है, कोई रसता नहीं मिलता, कोई मार्ग सुझाई नहीं देता—

थक गया हूं अब तो मेरे पाऊं भी अड़ने लगे।
रुक रहा है श्वास बाहु बलमें बल पड़ने लगे॥
थाह मिलता ही नहीं अरु दूर मुझसे छोर है।
डूबता जाता हूं मैं, लहरोंका इतना ज़ोर है॥

गाना

जो देखा सो दुखिया देखा—सुखिया कोई न देखा।
हर्ष, क्लेश, दुख, सुख इत्यादी, निज करमन का लेखा॥
जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, दुखिया है रघुराई।
साधू अरु बैरागी दुखिया, जीवन है दुखदाई॥
आशा दुखिया, तृषणा दुखिया, जिनसे तू लिपटाई।
तन धारी सब हि कोऊ दुखिया, करमन की प्रभुताई॥
सुकाचार्य्य ने दुखके कारण, गर्भमें की निठुराई।
जन्म लेतहि जगत की माया, त्यागी बनको जाई॥

साँच कहुं तो सब जग रूठ, झूठ कहो नाहि जाई ।
जगमें आकर वह भी दुखिया, जिस यह राह चलाई ॥

वशिष्ठ—शुभ समाचार, शुभ समाचार—

राम—गुरु देव: नमस्कार—

वशिष्ठ—राम राज्यकी जय, जयकार-राम ! अबतो चौदह भवन, दसो दिशायें, नव खण्ड, सातों द्वीप, आकाश, पृथवी और पाताल सबके सब गम्भीर स्वरसे यही कह रहे हैं—

राम—क्या कह रहे हैं महाभाग ?

वशिष्ठ—यही कह रहे हैं कि राघव की जय हो, रामराज्य की जय हो, राम तुम्हारे शासन, तुम्हारे न्याय, तुम्हारे राज्य कर्त्तव्य की प्रतिध्वनिने इन्द्रके इन्द्रत्व को भी नीचा दिखा दिया, प्रजाको इतना, स्वतंत्र और राज्य भक्त मैंने पहले किसी राज्यमें नहीं देखा, जानते हो यह सब तुम्हारी राज्य भक्तिका प्रताप है

बिकता है जसे प्रेम सौदा, अवधके प्रतिहाट पर :
हिल मिलके मृग और शेर जल पीते है एक ही घाट पर ।
खूब तुम्हारा नाम त्रैलोकीमें जुग जुग हो गया :
शुभ कर्मके परतापसे त्रेता भी सतजुग हो गया ।

राम—भगवन: यह सब आपके आशीर्वाद और उच्च शिक्षाका परिणाम है ।

वशिष्ठ,—किन्तु....

राम—गुरुदेव, इस किन्तु शब्दका भी अर्थ शीघ्र कह डालिए,

यन: जब तक आप इसे समाप्त न करेंगे–तब तक यह "किन्तु" सांपका रूप धारण कर मुझे डराता रहेगा -

बशिष्ट—रघुवर! डरने की कोई बात नहीं–राज्य भार लेकर राजाको जितने कर्त्तव्य करने चाहिये, वह तो सबके सब तुमने कर डाले, तुम्हारे राज्य कर्त्तव्यमें केवल एक हि त्रुटि बाकी रह गई है, सो वह भी अश्वमेध यज्ञ करनेसे दूर हो जायगी।

राम—अश्वमेध-यज्ञ?

बशिष्ट.—हाँ अश्वमेध-यज्ञ; तो फिर अब शीघ्र इस यज्ञोत्सवके लिये उपयोगी तैयारीका उचित प्रबन्ध करना चाहिये ताकि तुम्हारा, तुम्हारे कुलका, तुम्हारी प्रजाका कल्यान हो।

रोग, शोक, सब दूर हो जायं, प्रति दिन मंगलाचार रहे;
अवध पुरीके राजा-प्रजामें संगम जैसा प्यार रहे।
दूध, धान्यसे भारतका भर पूर सदा भंडार रहे;
अनावृष्टि दुर्भिक्षकी छाया भारत भूमिसे पार रहे।

राम—ऐसा हि होगा, गुरुवाक्य कभी विफल न जायगा।

बशिष्ट—तो फिर शीघ्र ही भारतवर्षके सर्व राजाओं, महाराजाओंको निमंत्रण पत्र भेजने और उसके साथ हि तुम्हारे अश्वालयमें जो सबसे अमूल्य; सुन्दर और गोरे बरणका घोड़ा हो, उसे विधिपूर्वक सिंगार कर कुछ सेनकाओंके साथ छोड़ देनेका प्रबन्ध करो...

१४

राम—जो आज्ञा !

वशिष्ठ—और इधर मैं भी यज्ञोत्सवका महूर्त तिथि लग्न देख दाख कर ठीक किये देता हूं—

राम—बहुत बहतर !

वशिष्ठ—(जाते जाते फिर लौट आना) हां सच किन्तु...

राम—आह, क्या अभी और "किन्तु" रह गया था महर्षि कहिये, कहिये और क्या आज्ञा है।

वशिष्ठ—कहता हूं,कहता हूं, सुनो रघुबर शास्त्रकारोंकी आज्ञा है कि धर्म कार्य्यमें स्त्रीका होना जरुरी है, स्त्रीके बिना यज्ञ फलीभूत नहीं होता-मेरा यह कहना है कि इस पुन्य कार्यमें तुम्हारी स्त्री कौन होगी ?

सी
उा
स

राम—स्त्री ! देव, मैं अपनी स्त्रीको तो निर्वासन दण्ड दे चुका हूं!

वशिष्ठ—किन्तु, अबतो उसे वापिस बुलाना पड़ेगा

राम—वापिस बुलाना पड़ेगा, किसको ?

वशिष्ठ—सीताको—

राम—जिस निरपराधनि सीताको रामने एक बार त्याग दिया उसे बुलाना पड़ेगा-

वशिष्ठ—कुछ ही करो, परन्तु तुम्हें सस्त्रीक तो अवश्य होना पड़ेगा

उ

राम—तो फिर रामके लिये यज्ञका आरम्भ करना भी असम्भव है

वशिष्ठ०—असम्भव है तो क्या वशिष्ठका वाक्य पूर्ण न होगा

राम—गुरुदेव ! क्या आप राम प्रतिज्ञाको तोड़कर अपना वाक्य पूर्ण करना चाहते हैं

बशिष्ट—हां, राम ! याद रक्खो, ब्राह्मण वाक्य विफल जानेसे तुम्हारे राज्यमें नित प्रति घोर उपद्रव होंगे,

राम—मुनिराज, किन्तु राम प्रतिज्ञा भंग होने पर सूर्यवंशी रीतिका, सूर्यवंशी मर्य्यादाका सर्वनाश हो जायगा !

फिर सूर्य वंशी सूर्यको निगलेगा राहू पापका :
आश्चर्य है सुनता हू जो मैं वाक्य ऐसा आपका ।

बशिष्ट—तो क्या फिर यज्ञ रुक जायगा ?

राम—चिन्ह तो कुछ ऐसे ही नजर आते हैं ।

वशिष्ठ—यदि यज्ञ रुक जायगा तो इससे तुम्हारे स्वर्गीय पिता पितामह, स्वर्गके देवता अप्रसन्न होंगे:

राम—होने दीजिये—

बशिष्ट—तिसपर वर्षा न होनेसे खेतोमें बोया हुआ अन्न सड़ जायेगा—

राम—सड़ने दीजिये

बशिष्ट—जब तुम्हारे राज्यमें अन्नकी उत्पत्ति न होगी तो प्रजा भूके मरेगी ।

राम—मरने दीजिये मैं क्या करुं महर्षि ! मेरी स्त्री तो नहीं है

बशिष्ट—नहीं है तो दूसरा विवाह करो ;

राम—क्या कहा दूसरा विवाह करुं, क्या रामको अब दूसरा विवाह भी करना पड़ेगा ?

बशिष्ट—राजाके लिये दूसरा विवाह करना कोई निन्दनीय कार्य नहीं स्वयं तुम्हारे पिता दशरथने तीन तीन विवाह किये

राम—यदि वह एकसे अधिक विवाह न करते तो वह भी यूं न मरते और आज राम भी इस दुरावस्थाको न पहुंचता

कुलकी मर्य्यादाको तोड़ा, उसका यह परिणाम है ;
नाचता है क्लेश चारों ओर सूना धाम है।

वशिष्ठ—किन्तु; प्रजा मंगलार्थ दूसरा विवाह करना धर्म शास्त्र की आज्ञा है।

राम—क्षमा करो, गुरुदेव ! क्षमा करो राम ! दूसरा विवाह करनेके लिये तैयार नहीं है

वशिष्ठ—कारण

राम—कारण, क्या रामको कारण भी बताना होगा, भगवन मेरे मुंहसे कारण न सुनिये—आह मेरे मुंहसे उत्तर नहीं निकलता—

(बोलते बोलते अपना गला पकड़ लेता है)

वशिष्ठ—राम, राम, तुम्हें क्या हो गया।

राम—भगवन ! रामसे कारण पूछकर पुराने घावको न खोदिए। राखमें दबी हुई चिनगारीको न सुलगाईए वर्नः मैं उस अंधकारमें पागलोंकी तरह मालूम नहीं क्या कर डालूंगा बचाईए—रक्षा कीजिए, राममें अब और सहन शक्ति नहीं—

मुझपर दया दृष्टी करो छोड़ो वह बातें ध्वंसकी ;
गुरु देव हो रक्षा करो, रघुवर अरु रघुवंश की

वशिष्ठ—शान्त, राम ! शान्त !!

सी
र्डा
र्स
उ

राम—शान्ति, गुरुदेव १२ वर्ष से आठों पहर जो हृदयमंडप सूखे गोबरकी गुप्त अग्निके समान भीतर ही भीतर जलकर इस अवस्थाको पहुँचा हो, उस हृदयमंडपमें शान्ति कहाँ—

आप क्या समझेंगे मेरे हार्दिक दुख त्रास को ;
आज्ञा देना ही केवल, जानते हैं दास को।
पर, नहीं यह सोचते-कितनी कठिन है आज्ञा :
आज्ञा सेवककी दे दी, जीमें जो कुछ आगया।

वशिष्ट—तो क्या, मैं यह समझ लूं कि राम अश्वमेध यज्ञ करनेके लिए असमर्थ है।

राम—यदि, दूसरा विवाह करना होगा तो मैं असमर्थ हूं असमर्थ हूं असमर्थ हूं, निरपराधनि सीताको तो घरसे निकाल चुका क्या अब रामसे आत्महत्या कराना चाहते हैं, यदि यही इच्छा है तो लाइये छुरी लाइये मैं आपको अपना हृदय निकालदुं छुरी नहीं तो इस पत्थरसे मेरा सिर फोड़कर अपनी इच्छा पूर्ण कीजिये ! ऋषीवर, मेरी ओर मुं क्या देखते हो आपका कुल्हाड़ा चलाइये, तपोबलसे भस्म कर दीजिये मंत्र शक्तिसे मेरे लिये स्वर्गके दरवाजे बन्दकर दीजिये, आप क्या यदि स्वयम् ब्रह्मा, विष्णु और शंकरजीकी भी अवज्ञा करनी पड़े, तो भी करूंगा किन्तु दूसरा विवाह न करूंगा—न करूंगा।

जब पती व्रतको निभा सकती है पत्नी हर्षसे :
तो पती फिर क्यों न लें शिक्षा इसी आदर्शसे।

रामने धारण किया पत्नीके व्रतको धर्मको ;
अब निभाऊंगा मैं अन्तिम श्वास तक इस कर्मको ।

कर्म (प्रवेशकर) निभाइये, भगवन निभाइये, और अश्वमेध यज्ञभी रचाइये: अर्थात् राजलक्ष्मी सीताजीकी स्वर्णमई मूर्ति बनवाकर यज्ञोत्सवमें, शुभकार्य्यमें अंशभागिनीका काम लीजिये (अदृश्य होना)

राम—मुझे स्वीकार है गुरुदेव मैं अश्वमेध यज्ञ करूंगा, आप यज्ञका कार्य आरम्भ कीजिए ऋषिवर! राम कर्त्तव्यकीरक्षा कीजिये और इस पुन्य कार्य्यको निर्विघ्न समाप्त कीजिये.

वशिष्ठ—ऐसा ही होगा राम तुम्हारा कल्याण हो—(जाना)

(कर्मका हंसते हुये फिर प्रवेश करना)

कर्म—मैंने आज तक, इस दम तक अपना कर्त्तव्य निभाया, भावीकी आज्ञानुसार कौतुक दिखाया, वाल्मीकि मुनि द्वारा लव-कुशका पालन पोशन कराया, वशिष्ठके मनपर अपना आसन जमाया, अश्वमेध यज्ञ का नया ढोंग रचाया, जब रामके मनमें सीताका अगाध प्रेम पाया— तो श्री सीताजीकी स्वर्णमयी मूर्ति बनवाकर यज्ञोत्सव आरम्भ कराया ।

कर्म बढ़ावे क्लेशको-कर्म करे कल्यान ,
कर्म भक्ति बिन साधना, सब ही थोथा जान ।
कर्म छुड़ावे रामको कर्म मिलावे राम ;
कर्म करे गति और ही-ले पहुंचे हरि धाम ।

...... कर्मने सबसे ऊँचा दरजा पाया, प्रबल है करमनकी माया क्यों कुछ आपके ध्यानमें आया (जाना)

सी
उ
स

उ

सातवां दृश्य

कवर जंगल।

(सीताकी कुटिया)

लव—(कुशके साथ माता सीताको पकड़े हुए लाते हैं) माता, माता क्या न बताओगी, अपना परिचय न दोगी।

सीता—दूंगी, बेटा, मैं तुम्हें अपना सब परिचय दूंगी, किन्तु आज नहीं, इस समय इतना ही समझ लो, कि तुम दोनों राजकुमार हो—

लव-कुश—राजकुमार!

कुश—माता! तो क्या हम राजाके पुत्र है?

सीता—निश्चय।

लव—निश्चय, तो फिर हम राजभवनमें क्यों नहीं रहते? निर्जन वनमें क्यों पड़े हैं?

सीता—बेटा! राजभवनमें ऐसा सुगन्धित वायु, मनहरण झरने, मनोहर कुंज लतायें, कहां—वहां तो दीवारों पर लटके हुए वन-भूमिके चित्र देख कर मनको बहलाना पड़ता है और यहाँ स्वाभाविक दृश्यावली, मूर्तिमती दृश्यावली—

लव—और माता जी तुम······?

सीता—मैं······मैं राजाकी पुत्री, राजाकी बहू और राजाकी पत्नी—

१४

कुश—राजाकी पत्नी—तो क्या तुम रानी हो, मां, तुम रानी हो ?

लव—माताजी ! यदि रानी हो तो फिर बन वासिओंके से वस्त्र क्यों पहनती हो ?

कुश—माताजी ! क्या भारत-सम्राट रामचन्द्रकी पत्नी महारानी सीताजी भी ऐसे ही वस्त्र पहनतीं हैं ?

सीता—(आंसू रोक कर) नहीं बेटा, नहीं।

लव—तो फिर तुम किस लिए पहनती हो ?

सीता—इस लिए, कि मुझ कर्मजली अभागिनी, कुलद्रोहन को पति भगवानने अपने शरीरको गन्दा फोड़ा समझ कर शरीरसे अलग कर दिया है।

लव—अलग कर दिया है माता जी, ऐसे निर्दई राजा, हमारे पिता रहते कहां हैं ?

सी
र्ग
र्स

सीता—अ्रु·········नहीं, नहीं इससे अधिक और मुझसे न पूछो, जब समय आयगा, आपसे आप तुम्हें मालूम हो जायगा, अस्तु। बेटा ! कल जहांतक तुमने मुझे अपना पाठ सुनाया था; आज उससे आगे सुनाओ मेरे अधैर्य्य मनको धैर्य्य दिलाओ, लव-कुश ! सुनाओ न बेटा—

उ

लव-कुश—सुनिए, माताजी ! सहर्ष सुनिए।

कुश—भैया लव ! कल कहांतक पाठ सुनाया था।

लव—कल—ठहरो, याद करलूँ।

इहि विधि द्वादश वर्ष विताय,
पुनि प्रभु पंचवटी में आय,

वर्ष त्रयोदस कियो प्रवेशा।
खरदूषण बध कीन्ह रमेशा॥

सीता—हां, हां, कल यहींतक "खरदूषण वध कीन्ह रमेशा" बस आज इसके आगे सुनाओ।

दोनों—सुनिये माताजी!

गाना।

माघ शुक्ल आठैं जब आई, दिन मध्यान दशानन जाई।
छलकरि हरी सीय महरानी, ले गयो निज लंका रजधानी।
सवरिहि गति दे पंचममासा, मिलि आषाढ़ सुग्रीव हुलासा।
वालिहि मार मास तहँ चारी, रहे प्रवर्षण पर असुरारी।
मार्ग शीर्ष कृष्णा सुभग, हरि बासर हनुमान।
सिन्धु लांघि लंका चले, महाधीर बलवान।
त्रयोदशी ढूंढ़न हनुमाना, पुनि अशोक बन माहि समाना।
जनक सुताके दर्शन पाई, मुद्रिका प्रभुकी दीन्ह गहाई।
लंक दाहकर सिय तह आई, चूढामणि ले चले सुहाई।

(सीता ढाढ़े मारकर रोती है)

लव—(गाना बन्दकर) जननी-जननी तुम रोती हो।

सीता—वेटा (आँसू पोछ कर) तुमसे क्या कहूं—इस राम कथा में न जानूं कौनसी ऐसी दुःख भरी आकर्षण शक्ति छुपी है कि सुनते ही मन आपेसे बाहर हो जाता है और नेत्र अपना अश्रुवेग रोक नहीं सकते।

कि ज्यों तूफानसे लहरें, उछलती है समुन्दरमें।
उमड़ आते हैं त्यों मनके, मगर हिरदयके सागरमें॥
फँसानेको मगर मनके, मैं धीरज जाल बुनती हूँ।
मगर सब भूलती हूँ, जब तुम्हारा पाठ सुनती हूँ॥

लव—माता! तो फिर हमे रोना क्यों नहीं आता?

सीता—बेटा अभी तुम्हारे हँसनेके दिन हैं-अस्तु जावो, लवकुश? जाओ, तुम्हारे धनुर्भ्यास करनेका समय हो गया। जाओ माता वारी, जाओ। बेटा! अब बाकी कथा कल सुनूंगी।

लवकुश—जो आज्ञा मातेश्वरी,—प्रणाम जननी-(जाना)

सीता—चिर युग जीओ बेटा! धैर्य्य;मनकी दुखित वृत्यो—धैर्य्य हृदयकी अन्तर वेदना-शान्त!

यद्यपि जीती हूँ किन्तु, श्वास विष पीती हूँ मैं।
एक आशा है कि जिसकी, आशपर जीती हूँ मैं॥
खींचता है धैर्य्य रूपी अश्व जब रथ श्वासका।
नाचता है चित्र आँखोंमें, उसीदम आसका॥

मालती—(प्रवेशकर)

आसरा लेता है जो संसारमें विश्वासका।
एक दिन वह देखता है चित्र जिन्दा आसका॥

सीता—किन्तु बहिन मालती-वह दिन कब आवेगा। अब तो विश्वास भी अन्तिम श्वास ले रहा है।

मालती—बहिन सीता! कहावत है कि "जबतक साँस—तबतक आस" मेरी सुनो और फिर विचार करो। तुम्हें वनमें आये बारह वर्ष हो गये, किन्तु तुम्हारे ही लिये महात्मा

रामचन्द्रजीने अबतक दूसरा विवाह नहीं किया। स्त्रीके लिये क्या यह कम गौरवकी बात है? इसलिये धैर्य्य, भागशालिनी, थोड़ा और धैर्य्य।

सीता—भाग्यशालिनी? सत्य कहा प्रिये मालती, तुम सत्य कहती हो, वास्तवमें मुझसी भाग्यशालिनी दूसरी और कोई नहीं, कोई नहीं, क्योंकि मैं रामकी पत्नी हूं—भारत सम्राटकी पत्नी हूं, मर्य्यादा पुरुषोत्तम रघुवरकी पत्नी हूं, किन्तु प्रिय मालती जब लव-कुशकी ओर देखती हूं—जब उनकी ओर ध्यान जाता है तो आत्मा रुधिर धारा आंखों द्वारा बहाती है—छाती फट जाती है कहां दोनोंको राजसी वस्त्र हीरा जड़ित मुकुट पहिनकर राजकुमार कहलाना था, हज़ारों दास दासिओंमें जीवन बिताना था और कहां अब गलेमें कफनी पहनकर वनवासी कहलाते हैं—

यही क्लेश मेरे दिलका कांटा, यही क्लेश जिगरका फोड़ा है।
नहिं जीति हूं नहिं मरती हूं, यह क्लेश मुझे क्या थोड़ा है।
यों तो स्वाभाग्यवती हूँ मैं, पर भाग्य सियाके फूटे हैं॥
क्योंके जीवन स्वौभाग्य मेरे, श्रीराम सियासे रूठे हैं॥

वाल्मीकि—(प्रवेशकर) झूटा जीना, झूटा मरना, दुनियाके रिश्ते झूटे हैं।

सीता—मालती—(दोनों मिलकर) गुरुदेव प्रणाम।

वाल्मीकि—सीता! सौभाग्यवती हो; मालती! सुखी रहो।

मालती—पिताजी ! आज तो आपका कुछ निराला ही वेश है; पीठपर मृगछाला—हाथमें कमण्डल। आपका ऐसा वेश पहले तो कभी नहीं देखा, क्या कहीं बाहर जानेका विचार है ?

वाल्मीकि—कहता हूं मालती, कहनेके लिये ही तो आया हूं।

मालती—महाभाग्य ! फिर आज्ञा कीजिये।

वाल्मीकि—चौंक उठोगी, आश्चर्य्य मानोगी।

मालती—वह ऐसी कौनसी आश्चर्य्यकी बात है फिर कह दीजिये न !

वाल्मीकि—मैं दो दिनके लिये परदेश जाना चाहता हूं।

मालती—"प्रत्यक्षस्यकिं प्रमाणम्" सो तो आपके वेशसे ही प्रगट हो रहा है।

सीता—परदेश ! किन्तु गुरुराज ! कौनसे देश ?

वाल्मीकि—दूर नहीं—बस यहीं अयोध्यातक।

दोनों—अयोध्यातक !

वाल्मीकि—मैंने कहा न था कि चौंक उठोगी सो वही हुआ न ! मुझको तुझे बताना ही नहीं था।

सीता—अयोध्या ! अयोध्या किस हेतु जाइयेगा ?

वाल्मीकि—किस हेतु ? लो मैं भूल ही गया—स्मर्णशक्ति शिथिल हो गई। वृद्ध अवस्थाने स्मर्ण शक्तिको हर लिया (सोचना) किस हेतु अयोध्या जा रहा हूं ? हां ! हां ! लो याद आ गया—निमन्त्रण आया है—अयोध्यासे निमंत्रण आया है।

मालती—निमंत्रण ? कैसा निमंत्रण ?

वाल्मीकि—ब्रह्मभोजका।

सीता—किसने निमंत्रण भेजा है ?

वाल्मीकी—अयोध्या नरेशने—वही जिन पर मेरी अपार भक्ति, अपार श्रद्धा है। वही रामचन्द्र अब अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं।

सीता—अश्वमेध यज्ञ ?

मालती-आह ! दुर्भाग्य सीता।

वाल्मीकि—दुर्भाग्य सीता, यह क्यों, मालती ! यह क्यों, सीता दुर्भाग्य क्यों ?

मालती-महर्षि ! मैं आपके श्रीमुखसे कईवार सुन चुकी हूं, कि यज्ञमें पत्नीका होना जरूरी है, स्त्रीके बिना यज्ञ आरम्भ हो ही नहीं सक्ता, सो मेरा यह कहना है, कि इस यज्ञो-त्सवमें रामकी पत्नी कौन होगी ?

वाल्मीकि—(दिलमें) हाय, हाय, मैंने क्यों इन दोनोंसे यज्ञकी चर्चा छेड़ी, बहुत बुरा हुआ अब इन्हें क्या उत्तर दूं। (प्रगट) पुत्री, अभी तो मैंने केवल इतना ही सुना है कि रामचन्द्र अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं, यह मैं नहीं जानता कि इस यज्ञोत्सवमें रामकी सहधर्मिणी कौन होगी। पुत्री, अधीर मत हो—अभी यज्ञ आरम्भ नहीं हुआ।

मालती—पिताजी ! यदि आप इतना भी नहीं जानते तो फिर

किस लिये आपने निमंत्रण स्वीकार किया ? जब कि अभी यज्ञ आरम्भ ही नहीं हुआ तो फिर अयोध्या जानेकी ज़रूरत ही क्या है ?

वाल्मीकि—यही जाननेके लिये मैं अयोध्या जाता हूं और साथ ही बात चीतमें लवकुशके जन्मका वृतान्त भी राम को सुनाऊंगा। मैं तो वही करूंगा जो उचित होगा, जिससे लवकुशको राज्याधिकार प्राप्त हो।

सीता—जाइये, महामुनि जाइये, और लवकुशके भविष्य-जीवन को जैसा उचित समझिये बनाइये। किन्तु......

वाल्मीकि—हाँ कहो पुत्री ! क्या कहना चाहती हो, कहो, रुक क्यों गई ?

सीता—बस यही कि श्रीरघुवीरसे मेरी चर्चा न कीजियेगा। महर्षि ! सीता आपसे यही भिक्षा मांगती है। दीजिये भिक्षा दीजिये। मुनिवर ! प्रतिज्ञा कीजिये।

न कहना उनसे जीती है अभी तक जानकी बनमें।
अगर पूछे, तो कहना, मर गई दुर्भागिनी बनमें॥

वाल्मीकि—झूठ बोलूं ! यह तो मेरी शक्तिसे बाहर है। किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारी चर्चा रामसे न करूंगा। उठो देवी ! उठो ! राजरानी ! उठो !

सीता—अच्छा इतना ही सही, गुरुदेव इतना ही सही।

वाल्मीकि—पुत्री ! यदि वहाँ जाकर मैंने दूसरा तौर देखा, अर्थात् रामने अपना पुनःविवाहकर लिया तो बस मैं रामसे

अपनी श्रद्धा भक्ति सब कुछ उठा लूंगा। मैं अपने बनाये हुये रामायणके टुकड़े टुकड़े कर उसे गङ्गामें बहा दूँगा। किन्तु यह प्रकृतिका नियम नहीं कि प्रेम, जीवन का दूसरा साथी बनाये। राम, सीताको भूल जाये। मैं रामको अच्छी तरह जानता हूं। मैंने रामायण वृथा नहीं लिखी।

वह राम मर्य्यादा पुरुषोत्तम, वह राम सुन्याय करता है।
वह राम प्रकृतिका स्वामी दुनियाका करता धरता है॥
वह राम अगर है राम तो फिर वह कुलकी रीति न तोड़ेगा।
कट जायेगा गर सीस मगर सीताकी प्रीति न छोड़ेगा॥

मालती—निःसन्देह गुरु देव! तो क्या लवकुशको भी आप अपने साथ ले जाइयेगा?

वाल्मीकि—नहीं! अभी नहीं! किन्तु आशा है कि मुझे शीघ्र वापस आना पड़ेगा और पुत्रोंको माता समेत ले जाना पड़ेगा।

मालती—भगवान ऐसा ही करें।

वाल्मीकि—तो लो अब मैं चला।

दोनों—प्रणाम पिताजी! प्रणाम।

वाल्मीकि—कल्याण।

(सबका प्रस्थान)

आठवां दृश्य।

[स्थान—वाल्मीकि आश्रमके साथ वाला बन]

सैनिक—(प्रवेशकर) बालक ! यदि अपनी माताकी गोद सूनी नहीं करना चाहता तो घोड़ा छोड़ दे।

लव—सुना नहीं, जरा फिरसे कहो !

सैनिक—यदि अपनी माताकी गोद सूनी नहीं करना चाहता तो घोड़ा छोड़ दे।

लव—घोड़ा छोड़ दूं !

सैनिक—हां।

लव—हरगिज़ नहीं !

छोड दूं घोडेको कैसे क्या वह कुछ नाका नहीं।
हाथमें आये हुयेको छोडना सीखा नहीं॥
यद्यपि साहस है तो ले जाओ बलसे, जोरसे।
मैं भी हूं, घोड़ा भी है, तुम घेर को चहुं ओरसे॥

सैनिक—हैं इतना अभिमान !

कुश—(लपककर) प्रत्यक्षको क्या प्रमाण !

सैनिक—तो फिर सावधान।

लव–ठहरो श्रीमान ! पहले अपना परिचय तो दे लो, फिर धनुष को उठाना।

सैनिक—क्या तुमने मुझको नहीं पहचाना ?

दोनो—ऊं हूं।

सैनिक—जानते नहीं हो! मैं भारत सम्राट श्रीरामचन्द्रजीका सैनिक हूं।

लव—हा! हा! हा! तो क्या तुम सैनिक हो सैनिक? तो फिर अपने भारत सम्राटको बुला लाओ।

सैनिक—वह किस लिये?

लव—आकर अपना घोड़ा ले जायें।

सैनिक—वह यहां नहीं आ सकते।

कुश—तो फिर अपने सेना पतिको ले आओ।

सैनिक—वह भी नहीं आ सकते।

लव—तो फिर तुम भी घोड़ा नहीं ले जा सकते।

सैनिक—मैं अवश्य घोड़ा लेजाऊंगा। नहीं तो मुझसे युद्ध करो।

लव—(हंसकर) तुमसे युद्ध करुं? ऊंहूँ।

सैनिक—कारण?

लव—यही कि तुम राजवंश नहीं हो।

सैनिक—और तुम?

लव-कुश—हम क्षत्रिय राज-कुमार।

सैनिक—अच्छा सरकार! मैं हारा और आप जीते।

लव—तो फिर हम चलें।

सैनिक—और घोड़ा?

कुश—घोड़ा मिल नहीं सकता।

सैनिक—तो याद रख, घोड़ा दिये बिना तू यहांसे हिल नहीं सकता।

लव—क्या कहा ? हिल नहीं सकता।

सामने आ जाय जिसको जिन्दगी बे अर्थ है।
रोकनेकी किसमें देखूं तो सही सामर्थ है॥
क्षत्रिय प्रण के सामने रखता नहीं परिणामको।
युद्ध करनेके बिना, घोडा न दूंगा रामका॥

सैनिक—हैं! इतना साहस! बस,बस, मैं अभी अपने सेना पति को इस घटनाका समाचार देता हूं।

लव—तुम्हारे सेनापतिका नाम ?

सैनिक—वीर लक्ष्मण। वीर लक्ष्मण।

दोनो—हा! हा! हा! क्या वह लक्ष्मण जिसने पंचवटीमें रावणकी बहिन शूर्पनखाकी नाक काटकर अपनी वीरता दिखाई? हा! हा! हा! अच्छो रहो, अच्छो रहो!

सैनिक—ठहरो, ठहरो ऋषिबालको! न घबराओ, मैं अभी तुम्हें इस हँसीका मज़ा चखाता हूं।

लव—भैय्या कुश! क्या कहूं युद्धका नाम सुनते ही रगोंमें जमा हुआ खून जोशके मारे खोलने लगा, मानो किसी गुप्त शक्तिने मेरे अङ्ग प्रत्यङ्गमें युद्धका उत्साह भर दिया।

भुजदण्ड मेरे युद्ध करनेको भैया कुश आज फडकते हैं।
कंधेपर धनुष तडपता है, तर्कशमें बान तडपते हैं॥
रणक्षेत्रमें बानोंकी क्रीडा दिखलाकर चकित बनाऊंगा।
आकाशतले आकाश नया बाणोंका मैं दिखलाऊंगा॥

कुश—हैं यह कैसा कोलाहल! शायद सेना आ पहुंची।

लव—मुझे भी तो ऐसाही प्रतीत होता है। अस्तु—भैय्या कुश!

तुम कुटिमें जाओ और वहां जिस कदर बाण रक्खे हों सबके सब उठा लाओ।

कुश—अभी लाया। (जाना)

सीता—बेटा, बेटा! तो क्या इस घोड़ेके लिये युद्ध करेगा?

लव—निश्चय युद्ध करूंगा।

सीता—इस असंख्य सैनाके साथ?

लव—जी हां।

सीता—अकेले?

लव—जी हाँ।

सीता—इस किशोर अवस्थामें?

लव—जी हां, माता जी! इसी किशोर अवस्थामें। क्या आप क्षत्रिय पुत्रकी प्रतिज्ञा भंग करना चाहती हैं जो मुझे 'अकेले' और 'किशोरावस्था' सुनाकर डराती हैं। जननी! सिंहका एक ही बच्चा सौ गीदड़ोंका नाश कर सकता है; सागरकी छोटी सी छोटी वेग भरी लहर विशाल पर्वतके टुकड़े टुकड़े कर सकती है; अकेली बिजली सारे नगरको भस्म कर सकती है; आंधी अकेलीही पल मात्रमें हरे भरे वनको उजाड़ सकती है।

गो अकेला हूं मगर रखता हूं बल भूचालका।
मेरा एक एक तीर बल रखता है सौ सा कालका॥
क्षत्रिय प्रण हो चुका अब डरसे मैं आजाद हूं।
क्योंके क्षत्री वीर हूं, क्षत्रीकी मैं औलाद हूं॥

सीता—वही राम जैसा अपूर्व प्रकाश! वही अलौकिक तेज! वही रघुवर जैसी दृढ़ प्रतिज्ञा! वही साहस! गर्वसे वसे ही श्वास चल रहा है। मानो इस समय ठीक रामका प्रतिविम्ब मेरे सामने खड़ा है। जाओ बेटा! जाओ। युद्ध करो, मैं तुम्हारे युद्ध उत्साहमें दीवार बनकर खड़ी होना नहीं चाहती। तुम क्षत्रिय सन्तान हो और मैं क्षत्रिय ललना हूं। बेटा! मैं अपने चरणोंकी धूल तुम्हारे ललाट पर लगा कर आशीर्वाद देती हूं कि यदि मेरा पातिव्रत धर्म अखण्ड है ता मेरे आशीर्वादसे बेटा! ब्रह्माण्डके सर्व वीरोंपर विजय पाओगे।

लव—जननी! जननी!!

सीता—जाओ लव! जाओ!! माता वारी, जाओ, अपने कुलका गौरव बढ़ाओ, संसारको अपना पराक्रम दिखाओ।

(प्रस्थान)

नवां दृश्य ।
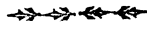
[स्थान—युद्धक्षेत्र]

(लव-कुश समर-वेशमें सूर्य्यवंशी सैनासे घोर संग्रामकर रहे हैं 'हर हर शंकर' और "जय राघव" की आवाज़ें सुनाई देती हैं। भरत और शत्रुघ्न एक ओर मूर्च्छित पड़े हैं)

लव—हर हर शंकर ! वह मारा।

कुश—हर हर शंकर ! वह मारा।

लक्ष्मण—क्या भरत और शत्रुघ्न मूर्च्छित हो गये ! इतनी किशोर अवस्था और इतनी असीम सत्ता ! सैनिको ! थम जाओ। बनके शिशुओं ! घोड़ा छोड़ दो, दूढ़ बनकर अपने प्राण न गंवाओ। तुम अभी बालक हो और ऋषियोंकी सहायता करना सूर्यवंश का मुख्य धर्म है।

लव—सैनापति जी ! क्या अपने छोटे भाई भरत और शत्रुघ्नको पृथ्वीपर मूर्च्छित पड़ा हुआ देखकर धर्मकी ओट लेना चाहते हो ? यदि वीर हो तो सामने आओ, हमसे युद्ध करो।

लक्ष्मण—युद्ध करूं ? कमलके समान कोमल शरीर, सुकुमार, ऋषिबालकोंसे युद्ध करूं ? जिन्हें देखकर हृदयमें सनेहका अपार सागर उमड़ रहा है, जिस शिशुमुखमण्डलको निहारते ही अधर चूमनेके लिये फड़क रहे हैं; आत्मा उछलकर गोदिमें लेनेके लिये बाहें फैला रही है।

लव—हूं समझा। तो क्या हमें प्यार दिलासेसे ठगना चाहते हो ?

वीरलक्ष्मण, यह न होगा। मैं अपने अन्तिम वाणकी भयङ्कर टंकार सुनाये बिना घोड़ा न दूंगा।

लक्ष्मण—घोड़ा न दोगे ?

लव—हां, हां न दूंगा, न दूंगा। न दूंगा।

जब तलक बाहूमें बल, करमें धनुष और बाण है।
जब तलक इस बाणमें, क्षत्रीय कुलका आन है॥
तब तलक डंका बजाऊंगा यहां संग्रामका।
पर न जीते जी कभी छोडूंगा घोड़ा रामका॥

लक्ष्मण—हैं इतना दृढ़ साहस ! तो फिर सावधान।

लव-कुश—जय भगवान।

लक्ष्मण—नहीं चढ़ता, वाण चिल्लेपर नहीं चढ़ता। मानो कोई गुप्त शक्ति पीछेसे मेरी भुजाओंको बलपूर्वक थाम रही है।

मैं छुड़ाता हूं भुजा तो दिलको समझाता है दिल।
कौन हैं यह, किस लिये इनकी तरफ जाता है दिल॥
वीरताका रक्त क्या नस नसमें जमकर सो गया।
वाण तर्कश से निकलते ही नहीं, क्या हो गया॥

ऋषि बालको ! पहले तुमही मुझपर वाण चलाओ।

लव-कुश—तो फिर सामने खड़े हो जाओ। हर हर शंकर।

लक्ष्मण—आह ! आह ! कैसा तानकर वाण लगाया। धन्य है वह जननी जिसने तुम्हें जाया। विभीषण ! विभीषण !!!

विभी०—हैं क्या ? वीरलक्ष्मण अचेत हो गये ! ऋषि बालको, सावधान।

लव—क्या विभीषण ? क्या लंकाधीश रावणका भाई विभीषण ?

विभी०—हां हां वही विभीषण।

लव—पहचाना, पहचाना, अपने भाई रावणकी स्त्री मंदोदरीको माता कहकर स्त्री बनाने वाले कापुरुष ! क्या समरभूमि में हमारे सामने तलवार उठाते हुये तुझे लज्जा न आई ?

विभीषण—आह मेरा इतना अपमान ! सावधान। लो इस कटुवचन का प्रतिकार।

लव—दुराचार, पहले मेरे वाणको तो सम्हार।

विभीषण—आश्चर्य ! ऐसा तीक्षण वाण ! सुग्रीव, हनुमान, हनुमान ! (हनुमानका कुछ वानरोंके साथ प्रवेश)

हनुमान—जय जय राघव, सावधान, ऋषि कुमारो ! सावधान।

लव-कुश—जय भगवान ! (वाण चलाना)

लव—भैय्या कुश ! हनुमानपर वाण मत चलाओ, इसे नाग फन्देमें फँसाओ हम इसे अपना खिलौना बनायेंगे !

कुश—ऐसाही लो। (नाग फन्देमें फँसाना)

हनुमान—त्राहिमान ! त्राहिमान ! मृत्युलोकमें ऐसा बलवान !

लव—भैय्या कुश ! रणका मदान हमारे हाथ रहा। (सीन फटता है)

राम—हैं ! यह मैंने क्या देखा ? लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण और हनुमानसे वीर बलवान सबके सब मूर्च्छित। आह कैसी विपदा ! कैसी आपत्ति !

(कर्मका एक ओरसे प्रगट होना)

कर्म—कर्मगति ! कर्मगति !!

ड्राप

तृतीय अंक
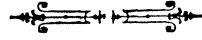
प्रथम दृश्य ।

—:*०*:—

[स्थान—बाल्मीकि आश्रम]

गाना

सीता—

मैना जीवनकी बोलत है मैं न-रहूंगी डाली पर,

इस डालीकी कड़वी फालियां, मीठे फल खा खा मैं पलियां,

उड़नेको पर तोलत है—

पुण्य पाप कायाकी छाया, जैसा बोया वैसा पाया,

मनुवा काहे डोलत है—

(ज़बानी) आह ! यह मेरा जीवन क्या है ? मानों जागते सोतेकी मध्य दशा है ।

लव— (प्रवेशकर) माता जी, माता जी, मैंने आपके आशीर्वादसे शत्रु दल पर विजय पाई । बहुत कुछ राज्य सम्पति भी हाथ आई (निकालता है) इसके अतिरिक्त रण भूमिसे मैं अपने लिये एक विचित्र खिलौना लाया हूं ।

सीता—खिलौना ? बेटा, कैसा खिलौना ? (लवके हाथसे हार लेकर) है यह तो वीर लक्ष्मणके गलेका हार है । बेटा, बेटा, यह हार तूने कहांसे पाया ?

लव—भरत-शत्रुघ्नको भूमिपर गिरानेके पश्चात् जब सेनापति लक्ष्मणको भी अपने वाणसे मूर्च्छित बनाया तो भैय्या कुश उसके गलेसे उतार लाया ।

सीता—आह बेटा ! यह तूने मुझे क्या सुनाया ? लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ? हे रघुनन्दन ! यह कैसा सुख-भंजन समाचार !

जिसने मेरी नस नसमें आहोंके अंगारे भर दिये ।
और जीते जी मन आत्माके टुकड़े टुकड़े कर दिये ॥
दुर्भागिनी पहले ही थी, अब कालराशी बन गई ।
जीवनमें रघुकुलके लिये मैं सर्वनाशी बन गई ॥

लव—जननी ! जननी !! (सँभालते हुये)

सीता—कौन ! कौन !! वीर हनूमान ! (हनुमानका प्रवेश) हे भगवान !

हनुमान—कौन ? मेरी स्वामिनी, राजराणी, रघुकुल शिरोमणि श्री भगवान रामचन्द्रकी धर्मपत्नी माता सीता ! प्रणाम, मातेश्वरी ! प्रणाम ।

लव—(बाण तानकर) थाम, जिह्वाको थाम । नर, पशु समान, मेरी श्रीमाताको रामचन्द्रकी पत्नी बनानेवाले कापुरुष सावधान ।

थाम ले जिह्वाको वरनः काम लूंगा वाणसे ।
हाथ धो बैठेगा तू भी जानके, निज प्राणसे ॥

सीता—(धनुष छीनकर) खबरदार जो इनपर वाण चलाया ! जानते हो ये कौन हैं ?

कुश—जानता हूं, अच्छी तरह जानता हूं तब ही तो आपके सामने इसे बांधकर लाया हूं।

लव—ऊं। यह वह हनूमान है जिसने अपनी पूंछसे लंकापुरी को जलाया था, जिसने संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणको जिलाया था।

सीता—हां हां यह वही महावीर हैं।

लव—किन्तु इस समय तो मारे डरसे श्वासमें हलचल और आंखोंमें नीर है।

> सुनते हैं तुम बज्रवीर हो विख्यात इस ब्रह्माण्डमें।
> वह बल कहां है, जो पढ़ा है हम ने लंका काण्डमें॥

सीता—(आंखें दिखाकर) बच्चो, असभ्य न बनो। छोड़ दो, इन्हें छोड़ दो।

लव-कुश—माता जी! जो आज्ञा। (नाग फंदको हटा लेना)

सीता—हनूमान! क्षमा करना, यह मेरे बच्चे......

हनुमान—आपके बच्चे? सौभाग्य—तो क्या यह माता सीता जीकी सन्तान हैं? समझा, समझा, तब ही इस कदर बलवान हैं,—

> निज बाहुबल दिखलाके हैरां कर दिया हनुमानको।
> मैं सिर झुकाऊं क्यों न फिर श्रीरामकी सन्तानको॥
> मिलते हैं नखसिख और अंग प्रत्यंग सब रघुवीरसे।
> धोऊंगा इन नन्हेसे पैरोंको मैं अश्रु नीरसे॥

लव—हनूमान जी! रामायणमें आपकी जितनी स्वामी-भक्ति

पढ़ी थी, देखनेमें उससे भी अधिक पाई। उठो भाई! उठो (उठाते हैं)।

कुश—माताजो! तो क्या हम अयोध्या नरेश श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र हैं?

सीता—हां बच्चो, वही तुम्हारे पिता हैं।

लव—वही हमारे पिता हैं? अस्तु-हनूमानजी! तो फिर इस सामनेवाले वृक्षसे यज्ञका घोड़ा खोलकर शीघ्र अयोध्या पहुँचाओ। ऐसा न हो कि हमारे पिताजीके आरम्भ किये हुये यज्ञमें किसी प्रकारका विघ्न उत्पन्न हो।

हनुमान—जो आज्ञा।

लव—और सुनो। यह लो—देवराज इन्द्र महाराजका दिया हुआ 'वर्षावाण' है। इसे अपनी सैना पर चलाओ। सर्व सैनाकी मूर्च्छा दूर हो जायगी।

हनुमान—(बान लेते हुए) धन्य हो वीरकुल शिरोमणि, धन्य हो! प्रणाम माता! प्रणाम। भैय्या लव कुश! राम राम।

(प्रस्थान)

कुश—माताजी! तो क्या अयोध्यापति हमारे पिता श्रीरामचन्द्र-जीके घरसे निकाली हुई धर्मपत्नि सीता तुम्ही हो?

सीता—हां बेटा! मैं ही वह दुर्भागिनी सीता हूं।

लव—मेरी माता और घरसे निकाली हुई माता? ओ विधाता! ओ विधाता!!

सीता—लव, बेटा लव! क्या मेरे कलंकमय जीवनका रहस्य

जानकर तुम्हारी मातृ-श्रद्धा, मातृ-भक्तिको ठेस लगी ? जो इस प्रकार विकारभरी नज़रोंसे मेरी ओर देख रहे हो ?

लव—माता ! माता !!

सीता—बच्चो ! मुझसे घृणा न करना, मुझ कर्मजलीसे घृणा न करना, वरन इस आभाहीन शरीरकी नीरस ध्वनि, धुंधले नेत्रोंकी मन्द ज्योति, आकाशमें लीन हो जायगी। यद्यपि मैं सूर्यवंशके लिये धूमकेतु, पतिके लिये जीवन-श्राप और तुम्हारे लिये उजड़ी हुई दुनिया हूं, किन्तु फिर भी तुम्हारी माता हूं, तुम्हारी जननी हूं। मैंने कलेजा निचोड़-निचोड़कर तुम्हें पाला है। हैं ! अब भी तुम चुप हो ? समझी, तुम अब भी मुझ दीन अधीन अभागिन सर्वनाशीसे घृणा करते हो जो अबतक चुप खड़े हो। बोलो, बोलो, फिर भी तुम चुप हो। बेटा लव, बेटा कुश, बोलो, बोलो,—

लव— किस जिह्वासे प्रत्युत्तर दूं, जिह्वा ही शक्तिहीन हुई।
धिक् है मुझको माता मेरी, जो स्वामीभक्तिहीन हुई॥

सीता—बोलो, बोलो, और बोलो। फिर चुप हो गया ? मेरे हृदय-कमलपर घृणाकी गहरी अंधकारमई छटा बरसाकर मेरी गोदीका लाल फिर चुप हो गया। इससे अधिक और क्या घृणा होगी ?

नजर आता है चारों ओर अंधियाला ही अंधियाला।
और उसपर फिर बरसती है घृणाकी मेघमय ज्वाला॥

सहूं कैसे, नहीं शक्ती है मुझमें सहन करनेकी ।
जो इच्छा है तो यह इच्छा है इच्छा मुझको मरनेकी ॥

कुश—भैय्या लव ! क्या माताजी मूर्च्छित हो गईं ?

लव—मूर्च्छित हो गईं । माता ! मैंने तुमसे घृणा तो नहीं की, फिर क्यों मूर्च्छित हो गईं ? मैं और जननीसे घृणा करूं ? नहीं, जीवन पर्य्यन्त नहीं ।

उठो माता, उठो जननी, मेरे जीवनकी नैय्या हो ।
मैं रो दूंगा, न रूठो मुझसे, बोलो मेरी मैय्या हो ॥

सीता—(आंखें खोलकर) बेटा लव ! बेटा कुश ! (गलेसे लगाना)

दूसरा दृश्य।

[स्थान-अयोध्यामें रामका महल]

राम—(प्रवेशकर) मैंने क्या सुना ? क्या स्वप्न सत्य निकला ? लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, हनूमान, और विभीषण सबके सब मूर्च्छित ! तो क्या यज्ञका घोड़ा पकड़ा गया ?

कर्म—किसमें इतनी सामर्थ्य है जो भगवान रामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञको रोक सके।

राम—कौन कर्म ?

कर्म—भगवन् !

राम—निरपराधिनी सीताका त्याग और निर्दोष महात्मा शूद्रक-राजकी हत्या ! दो महा दुष्कर्म तो कर चुका, जिनका प्रायश्चित्त करनेके लिये मुझे सूर्य्यकीसी स्थिरता, वायुकीसी शीतलता और ब्रह्माकीसी आयु चाहिये। तुम नहीं जानते कि रामके हृदयमें कैसा पैशाचिक नाच हो रहा है, मानो मृणालिनीके श्रापका अक्षराक्षर फल रहा है। कहो अब रामसे कौनसी तीसरी हत्या कराना चाहते हो, जो इस प्रकार हाथ धोकर पीछे पड़े हो ?

कर्म—दयानिधे ! मैं और त्रिलोकीनाथ श्रीरघुवीरसे हत्या कराऊं ? असम्भव ! असम्भव !!

विना कारण मेरा क्या काम है जीवनकी बस्तीमें ।
करें सब याद खुद मुझको चढ़ाई और बस्तीमें ॥
मैं खुद आता नहीं रघुबर ! विधाता जब बुलाता है ।
तो फिर यह दास निज कर्त्तव्यको जगमें निभाता है ।

गाना

मैं कर्म, भावी कर्मकी दुनियामें सिरजनहार हूं ।
मैं राग, रघुवर रागके स्वरकी मधुर झंकार हूं ॥
किसकी रहेगी जीत अब यह जानना दुशवार है ।
मैं खड्ग रघुवर खड्गकी सुप्रचण्ड तीखी धार है ॥
भावीके हाथोंमें मेरे जीवनकी जीवन तार है ।
वह जिस तरह चाहे नचाले वह नचावनहार है ॥
सुकर्म या दुष्कर्म जो कुछ हो वह जिम्मेदार हैं ।
निर्दोश हूं "शैदा" मैं क्योंकि राम जाननहार है ॥

राम—कर्म ! तुम ठीक कहते हो—अस्तु । जाओ वही होगा, वही होगा । प्रेम उत्तम है या कर्त्तव्य ; शान्ति बड़ी है या चिन्ता ; मुक्ति अच्छी है या युक्ति ! कुछ नहीं, कुछ नहीं ।

जब तलक इस रूपमें हूं तब तलक आधीन हूं ।
कर्म बलके सामने दुर्बल हूं, शक्तिहीन हूं ॥
भोक दो छुरियां विधाता मेरे मर्मस्थानमें ।
ध्वंसकी ऊधम मचाओ मेरे हृदय—प्राणमें ॥

हनुमान—(प्रवेशकर) स्वामीके श्रीचरणोंमें प्रणाम ।

राम—कौन हनुमान ? प्रिय हनूमान ! बताओ, बताओ, युद्धका क्या समाचार है ?

हनुमान—स्वामीकी जय जय कार है।

राम—और यज्ञका घोड़ा ?

हनुमान—दसों दिशाओंके राजाओंसे श्रीरघुवीरका एकच्छत्र साम्राज्य स्वीकार करवा यज्ञ शालामें आ गया है।

राम—और भैय्या लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सुग्रीव इत्यादि ?

हनुमान—वह सबके सब चतुरँगिणी सेनाके साथ पीछे आ रहे हैं।

राम—तो क्या जो मैंने दूतकी ज़बानी सुना था, वह केवल कल्पनाकी सृष्टि थी ?

हनुमान—नहीं भगवान ! सत्य था।

> बाणोंके बर्षाजलसे सैना दलको पलमें भर दिया।
> दो बालकोंने हम सभोंको पानी पानी कर दिया॥
> बल देखकर उनका मेरा बल वेग बौना बन गया।
> रण क्षेत्रमें उनके लिये मैं तो खिलौना बन गया॥

राम—इतना असीम बल ! इतना अलौकिक पराक्रम ! हनुमान यदि तुम रामको पागल बनाना नहीं चाहते तो फिर शीघ्र बताओ कि वह दोनों बालक........

वशिष्ठ—(प्रवेशकर) राम ! सागर पर्य्यन्त सारी पृथ्वीमें अश्व घूम कर यज्ञ शालामें आ गया है। अब आप चलिये और अश्वमेध यज्ञके बाकी संस्कार भी कर डालिये।

राम—मुहूर्त भरके लिये भगवन् ! क्षमा कीजिये।

वशिष्ठ—अच्छा तो मैं तब तक यहीं ठहरता हूं। (बैठ जाना)

राम—हां फिर हनूमान ! वह दोनों बालक कौन हैं ? राक्षस हैं या यक्ष ?

हनूमान—ऋषिकुमारोंके वेषमें सूर्यवंशी बलवान।

राम—हनूमान ! हनूमान !! उनके पिताका नाम ?

हनूमान—भारत सम्राट्, अयोध्या नरेश, जिन्होंने अपनी पतिव्रता स्त्रीको, पतिप्राणा स्त्रीको जन्म भरके लिये घरसे निकाल दिया।

राम—क्या राम ?

हनूमान—जी हां।

राम—क्या वह सीताके पुत्र हैं ?

वशिष्ट—सीताके पुत्र ?

हनूमान—जी हां !

राम—सीताके पुत्र, रामकी सन्तान ! हनूमान, इसका प्रमाण ?

बाल्मीकि—(प्रवेशकर) बाल्मीकि मूर्तिमान। सूर्य, चन्द्र और असंख्य नक्षत्र साक्षी हैं कि लव-कुश रामके पुत्र हैं। देवी सीताके गर्भसे मेरे आश्रममें उनका जन्म हुआ।

राम—महामुनि बाल्मीकिके आश्रममें ? महर्षि ! इस समय वह कुमार कहां हैं ?

हनूमान—दण्डक बनमें। मेरी स्वामिनी, माता सीताके पास। उन्होंने ही तो यज्ञका घोड़ा लौटा दिया और अपने वर्षा-वाण द्वारा सैनाकी मूर्च्छा दूर करवाई।

राम—हैं! यह कैसी विचित्र घटना सुनाई!

वाल्मीकि—अयोध्या नरेश! आप जानते हैं कि मैं दो दिनसे यहां क्यों बैठा हूं। क्या अश्वमेध यज्ञ देखनेके लिये? नहीं, इन्हीं लव-कुशको आपसे राज्याधिकार दिलानेके लिये और बारह वर्षकी पतिवियोगिनी सीताको श्रीराघव की बाईं ओर बिठाकर यज्ञोत्सवकी शोभाको बढ़ानेके लिये। रघुवर! मैं तो यही चाहता हूं कि देवी सीता समेत दोनो राजकुमार आपके हवाले कर अपना अन्तिम कर्त्तव्य पूरा करूं।

राम—सीता! आह सीता तो अब मेरे लिये स्वप्नकी छाया हो गई। महाभाग! राम आपकी आज्ञाको अस्वीकार तो नहीं कर सकता, किन्तु सामर्थ्य नहीं।

वाल्मीकि—क्या कहा? सामर्थ्य नहीं? क्यों? किस लिये? क्या इसलिये कि रामने केवल प्रजारंजनको, समाज-इच्छाको, अपना राज्यकर्त्तव्य समझकर कल्पवृक्ष फूलोंके समान पवित्र सीताको, हृदयकण्ठकी अनन्त मालाको गलेसे उतारकर कूड़ेमें फेंक दिया? राम! मैंने स्वयं बरसों नरहत्याका व्यापार किया, मेरा बीता हुआ जीवन मानो एक भयानक कल्पनाकी नयी सृष्टि-रचना है, तोभी इतनी निष्ठुरता, इतनी निर्ममता, मैंने नहीं की, कि जो कर्त्तव्यके लिये स्वच्छप्रेमको बलिदान दिया जाय। जब कि ऐसी निष्ठुरता एक साधारण खूनी लुटेरा भी नहीं कर सकता तो फिर राम जैसे धर्मज्ञ नरेशसे क्यों हुई? (राम बोल नहीं सकते)

वशिष्ठ—धैर्य्य रघुवीर! धैर्य्य। महर्षि! केवल राजकर्त्तव्यकी रक्षा करनेके लिये रामने सीताको निर्वासन-दण्ड दिया।

वाल्मीकि—मुनि वशिष्ठजी! मेरा तो यह प्रश्न है कि निर्वासन-दण्ड क्यों दिया गया? किस अपराधसे सीताको घरसे निकाला गया?

वशिष्ठ—जिस अपराधसे, जिस कारणसे सीताका त्याग किया गया, वह कारण किसीसे छिपा नहीं, और वही कारण अबतक अयोध्याकी गली-गलीमें महारोगकी तरह फैला हुआ है।

वाल्मीकि—रक्षा करो, महात्मा वशिष्ठ! रक्षा करो। किसलिये ऐसे ज़हरीले गुप्त बाणके समान निन्दनीय वाक्य सुनाकर मेरी श्रवणशक्तिका, प्रेम-स्नेह-दया और भक्तिका, किसलिये इस रघुकुलका, इस वायुमण्डलका नाश करना चाहते हो?

वह सीता निर्दोष साध्वी है सती है वह निष्कलंकवाला।
कि जिसने भारतमें स्वामीभक्तिको कर्म,मन और वचनसे पाला
वशिष्ठ होकर वशिष्ठताका जो अब तलक भी न मर्म समझे।
बिचित्र घटना है राज्य नीतिके धर्मका जो यह धर्म समझे॥

वशिष्ठ—क्या बोलूं? क्या उत्तर दूं? महर्षि! तुम कविशिरोमणि हो। मैं अपना सिर झुकाकर पराजय स्वीकार करता हूं। तुम्हारी विद्वत्ताको, तुम्हारी अलंकारशक्तिको शत शत नमस्कार करता हूं।

वाल्मीकि—अहा ! आदि ऋषि वशिष्ठकी उदारता और ज्ञानबलके आगे वाल्मीकि भी सिर झुकाता है।

वशिष्ठ—रघुवर ! रघुवर !!

जो कुछ कहा है सबके सब परमाण ठीक हैं।
वशिष्ठ हूं तो क्या हुआ यह बालमीकि है॥
सीताको ग्रहण कीजिये रघुवीर आज ही।
यह शब्द है वशिष्ठके पत्थरपे लीक हैं॥

राम—सीताको ग्रहण करूं ? आह, कैसी अमृत भरी ध्वनि ! जिसके एक ही छींटेसे हृदयके सब पुराने घाव भर आये। अन्तःकरणकी मरुभूमिमें आनन्दमयी शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलने लगी। गुरुदेव, क्या कहा सीताको ग्रहण करूं ?

वशिष्ठ—राम ! भ्रम मत करो। मैं पुकार कर कहता हूं कि रघुवीर जाओ, निःसङ्कोच सीताको ग्रहण करो।

मीठी ध्वनीके सामने कड़वा ध्वनी किस कामकी।
वह भी प्रजा थी रामकी, यह भी प्रजा है रामकी॥
यो तो प्रजा दोनों है पर अन्तर है केवल कर्मका।
वह पापका दुख-नाद था यह नाद है शुभ धर्मका॥

राम—सीताको ग्रहण करूं ? जिस प्रकार उस निरपराधिनी सीताको घृणा, अपमान और धिक्कारके साथ घरसे निकाला था; उसी प्रकार उसके स्वागतके लिये आंखें बिछा दूंगा। जिस मार्गसे वह पुण्यमयी सीता आयगी, उस मार्गको अपने अश्रुजलसे छिड़कूंगा। किन्तु आज

मनुष्य-सन्तानको, स्त्री स्नेहका, स्त्री-प्रेमका, वह विचित्र दृश्य दिखाऊंगा कि जिसे देखकर,—

हर एक मानुष्यके चक्षु उमड़ आयेंगे अश्रुसे।
न देखा जायगा वह दृश्य शत्रुके भी शत्रुसे॥

लक्ष्मण—(प्रवेशकर) वन्दे भ्रातरम्!

राम—वत्स! तुम शुभावसरपर आये। बस, अब शीघ्र पुष्पक रथ तैयार कराओ और महात्मा वाल्मीकिके साथ दण्डक वनको जाओ। जिस पतिप्राणा सीताको वहां छोड़ आये थे अब तुम्हीं उसे लव-कुश सहित यज्ञशालामें ले आओ। मैं वहीं तुमसे मिलूंगा।

लक्ष्मण—जो आज्ञा। चलिये महर्षि!

राम—(वाल्मीकिसे) महर्षि! राम आपके उपकारको जीवन-पर्यन्त न भूलेगा।

वाल्मीकि—मैंने रामपर कोई उपकार नहीं किया, केवल अपने कर्त्तव्यका पालन किया है।

राम—प्रणाम महर्षि!

वाल्मीकि—आयुष्मान्।

राम (वशिष्ठसे) गुरुदेव! आप प्रधानद्वारा निमन्त्रितवाली नाट्यशालामें चलें। आज मैं महामुनि वाल्मीकिजीके बनाये हुए काव्य अर्थात् देवी सीताके जीवनका अन्तिम दृश्य देखूंगा।

वशिष्ठ—जैसी इच्छा। (जाना)

तीसरा दृश्य ।

[स्थान—वाल्मीकि आश्रममें कुटी]

सीता—(मालतीके साथ प्रवेशकर) मालती ! आज तो ऐसा जान पड़ता है जैसे शून्य आकाश-मण्डलमें सूर्यकी सुनहली किरणें मेरी अन्तिम शय्या बिछाकर मुझे बुला रही हैं ।

मालती—हैं हैं बहिन सीता ! आज कैसे अमंगलके शब्द सुना रही हो ?

सीता—सौभाग्य ! सौभाग्य ! जो मेरे जीवन प्रायश्चित्तका परिणाम मेरी मृत्यु हो । मालती ! तुम जानती हो कि मैं कौन हूं ?

मालती—तुम कौन हो ? जानती हूं, जानती हूं । बताऊं ? तुम स्त्री-जातिकी शिरोमणि हो, भाग्यशालिनी हो और अयोध्यानरेश श्रीरामचन्द्रकी पतिव्रता स्त्री महारानी सीता हो । और कौन हो ?

सीता—नहीं नहीं, भूल करती हो । मालती, मैं पिशाचिनी हूं, सर्वनाशिनी हूं; कारण कि मुझसी तुच्छ नारीके लिये भारत-सम्राट्ने, आर्यपुत्रने, मेरे पतिदेवने, अपने सुख-सौभाग्यकी आहुति दी, आत्मबलिदान किया । संसारमें केवल सीता, मन्दभागिनी सीता ही उस सत्‌चित्‌आनन्द-स्वरूप श्रीरामजीके दुःखोंका कारण बनी । यही कारण है कि जो बारह वर्षसे मुझ जन्मजलीको......

[गाना]

मृदु कोकिलका गाना मेरे कानोंमें विष बरसाता है।
और मलय पवन ज्यों फनवाला काला पन्नग लहराता है॥
नन्ही कलियोंका मुसकाना हिरदेकी पीर बढ़ाता है।
दिनका उजियाला भी अन्धयालेका प्रतिरूप दिखाता है॥
रूखा खानेका मुंहतक आते ही हाथोंसे गिर जाता है।
गंगाजल अंजल भरते ही बह जाता है, तरसाता है॥
जीनेके जीनेपर चढ़कर "शैदा" उतरा नहीं जाता है।
बस कूद पड़ूं मृत्यु धारामें यह ही जीमें आता है॥

वाल्मीकि—(प्रवेशकर) बधाई बधाई! जानकी, मेरी सौभाग्यशालिनी पुत्री, बधाई!! मुझ बूढ़े ऋषिकी मनोकामना बर आई। बारह वर्षसे जिस पतिदेवके लिये दिन-रात रोया करती थी वही देवता अब तुझे बुला रहे हैं।

सीता—पिताजी! पिताजी!! (रोना)

वाल्मीकि—बेटी! अब रोने-धोनेसे क्या काम? जानती हो तुझे लेनेके लिये मेरे साथ लक्ष्मण भी आये हैं।

सीता—लक्ष्मण? मेरा देवर लक्ष्मण? पिताजी, कहां हैं लक्ष्मण?

वाल्मीकि—वह कुटीके पीछे तुम्हारी इन्तजारमें पुष्पकरथमें बैठे हैं।

सीता—वह यहां क्यों नहीं आया?

वाल्मीकि—वह कहता था कि मैं कौन-सा मुंह लेकर सीताके पास जाऊं।

सीता—अस्तु—गुरुदेव ! तो मैं ही उसे क्यों न बुलाऊं ? लक्ष्मण लक्ष्मण ! आओ । सीतासे न शर्माओ । वत्स ! मुझसे इतनी लज्जा !

लक्ष्मण--(प्रवेशकर) माता ! माता !! (पांवपर गिरना)

शर्मसे हूं पानी पानी मैं सतीके सामने ।
तब भी भेजा रामने था, अब भी भेजा रामने ॥
आज्ञा रघुबरकी जो कुछ थी मैं आज्ञापाल हूं ।
यों तो देवर हूं मगर मैं कर्मसे चाण्डाल हूं ॥

सीता—(लक्ष्मणको उठाकर) उठो वत्स ! उठो । अहोभाग्य, जो बारह वर्षके बाद फिर अपने देवर लक्ष्मणको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

मुझको लेने आये हैं माता सुमित्रा सुत हितकारा ।
त्रेतामें मुझसी और कौन होगी सौभाग्यवती नारी ॥
मनके मनके पर जिनके पग सेवनका सेवन करती हूं ।
उस पग सेवनका पुण्य सभी देवरको अर्पण करती हूं ॥

लक्ष्मण—हैं ! धिक्कारकी जगह स्वच्छ प्यार ! पतिपग सेवनका अमूल्य पुरस्कार ! बता बता, मनुष्यहृदय ! बता, क्या यह प्रेम संसारमें और कहीं है ? नहीं, नहीं । निज कल्याण, निज स्वार्थ, निज आत्मबलिदान करनेवाला प्रेम और कहीं है ? नहीं, नहीं । और यदि है तो सबसे पहले देवी सीता ! तुमने उस प्रेमको पहचाना । धन्य हो, प्रेममई माता, धन्य हो ।

पति-प्रेममें भूली हो अपने आपको निज क्षेमको।
यह वह प्रेम है जिस प्रेमने उत्पन्न किया है प्रेमको॥
वैकुण्ठवासी प्रेमकी इस प्रेममईसे पराज्य हो।
भारतकी गोदीमें अचल तुम, प्रेमका स्वराज्य हो॥

(लव-कुश भागते हुये प्रवेश करते हैं)

लव--जननी! जननी!! क्या गुरुदेव आ गये?

दोनों - (सामने वाल्मीकको देख कर) प्रणाम गुरुदेव!

वाल्मीक—तुम्हारा मङ्गल हो। बच्चो! यह तुम्हारे पूज्य चचा हैं। इनके चरणोंमें प्रणाम करो।

दोनों—(लक्ष्मणके पास जा कर) कौन? सेनापति लक्ष्मण! चचा जीके चरणतलमें प्रणाम।

लक्ष्मण—(छातीसे लगाकर) सूर्य्यकुलदीपको! युग युग ज्योतिमान हो।

श्रीरघुवरकी इस जोड़ीमें ज्यों ज्योती समाई है।
यही कारण है यह ज्योती मुझे फिर खींच लायी है॥
धनुषपर हाथ, रणमें प्राण इनकी ओर रहता था।
यह अपने हैं, मेरा दिल तो मुझे पहले ही कहता था॥

वाल्मीक—जानकी, पुत्री! चलो। लव कुश समेत रथमें चलकर बैठो। राम तुम्हारी राह देखते होंगे।

(सबका प्रस्थान)

चौथा दृश्य।

[स्थान—यज्ञशालामें नाट्यशाला]

(असंख्य राजे महाराजे बैठे हैं। शत्रुघ्न, सुग्रीव, जामवन्त, हनूमान, विभीषण, अङ्गद, वशिष्ठ आदि बैठे हैं)

आवाज़— धर्मावतार राघवकी जय जयकार! राम राज्यकी जय जयकार!! (सीन खुलता है)

सूत्रधार— माननीय श्री दर्शकगण! आज इस रङ्ग-भूमिपर आदि कवि वाल्मीकिजी की भविश्यवाणी अर्थात् महारानी सीताजी के जीवनका अन्तिम दृश्य दिखा कर अभिनय समाप्त होगा। किन्तु इस अद्भुत दृश्य-काव्यको देख कर जनताके अन्तःकरणको अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। क्यों कि,—

इस काव्य कलाकी सर्व कला दुख-भंजन है; मन-रंजन है।
कारण कि नायिका जानकी है औ नायक श्रीरघुनन्दन है॥
धन भाग्य जो पात्रके रूपमें अब रंगभूमि पै रघुवर आयेंगे।
औ मम रघुवर श्रीरघुवर पर कवि-वाक्य छटा बरसायेंगे॥

(जाना)

रघुवर— बारह वर्षके पश्चात् फिर सामना होगा। कौन सी जिह्वासे बुलाऊंगा? जानकी! प्रिये सीता! प्राणेश्वरी! क्या इस जिह्वासे? नहीं! नहीं!! इसी जिह्वासे तो मैंने उस निर्दोष सीताको निर्वासन दण्ड दिया था। तो क्या

फिर चुप के सन्नाटेमें आकर इस देवी सीताके सतीत्व रूपी न्यायाधीशके सामने एक अपराधीके समान सिर झुकाये खड़ा रहूंगा ? नहीं, मैं घुटने टेककर क्षमा मांगूंगा। किन्तु क्या कहकर क्षमा मांगूंगा ? हृदय-कोषमें जिस कदर प्रेम भरे शब्द थे वह तो सबके सब अन्याय और कृतघ्नताके राक्षसने पोंच डाले,—

अब तो मैं वह बिन्दू हूं जो हो शून्यबाई ओरसे।
जीवन वृथा आये नज़र जब देखता हूं गौरसे॥
मम शुन्यताने शुन्य कर डाला, जिगरकी लागको।
काला किया इस कामिनीने जानकीके भागको॥

जानकी! जानकी!!

जानकी—(प्रवेश कर)

बन-वृक्ष तक करें नमन मेरे सुहागको।
छेड़ा है डालियोंने भी स्वागतके रागको॥

राम—जानकी! साक्षात् जानकी!

रघुवर—कौन जानकी? रघुवर द्वारा सताई हुई जानकी?

जानकी—नमः प्राणवल्लभाय नमः।

जो मन चक्षूमें रहते थे उनको प्रत्यक्ष निहारती हूं।
सौभाग्य मेरे जीवनमें जो फिर आरती उनकी उतारती हूं॥
संसारमें यह ही सीताकी सुख हर्ष आनन्दकी रेखा है।
निज भाग्य सराहे क्यों न सिया, सियारामने रामको देखा है॥

रघुवर—वही वही स्थिर प्रेम! वही अटल प्रेम!! मानो मुस्कराते हुये होठों पर मृदु हँसीकी रेखा नाच रही है। स्त्री

गौरव, स्त्री कर्त्तव्य का प्रतिविम्ब बिन्दू बन कर क्षमा और करुणा के साथ विशाल ललाट पर पति-भक्ति के महत्त्व का प्रत्यक्ष प्रमाण दिखा रहा है। कमलसे नेत्र, गंगा और यमुना का स्रोत बन कर अपनी पवित्रता की झलक दिखा रहे हैं। राम ! तूने इसी प्रेममई, करुणामई, सौन्दर्य, कल्लोल और ऐश्वर्यमई सीता को त्याग कर समाज इच्छाको अपने जीवनका मुकुट बनाया ?

धिक् है मेरे इस मुकुटको और मुकुटके अधिकारको।
धिक् है प्रजा-रंजनको धिक् कर्त्तव्य पालनहारको॥
धिक् है जो त्यागा अंगकी इस अर्द्ध हिस्सेदारको।
धिक् है जो मैं अब तक न समझा जानकीके प्यारको॥
धिक्के सिवा कुछ भी नहीं, धिक् ही मेरा आहार है।
अन्तर्ध्वनी सुनता हूं मैं धिक्कार है, धिक्कार है॥

सी
र्आ
र्स

राम—सत्य कहा, सत्य कहा, मानो मेरे हार्दिक शब्दों को दोहरा रहे हो। सीता ! सीता !!

जानकी—नाथ......!

रघुवर—जानकी ! (गले लगाने से रुक कर) जानकी, क्या वह जानकी, जो कलंक-कालिमाके सांचेमें ढाली गई ? हां वही, वही, जो प्रजाकी नजरोंमें निन्दित होकर अयोध्यासे निकाली गई। उस जानकी को ग्रहण करूं ? नहीं नहीं जब तक तुम अपनी शुद्धताका प्रमाण देकर अपने सतीत्व बलसे प्रजाकी हार्दिक कालिमाको न धो लोगी; जबतक

उ

प्रजा एक स्वर से जानकी को ग्रहण करने के लिये मुझसे प्रार्थना न करेगी तब तक तुम्हें ग्रहण न करूंगा, न करूंगा।

जानकी—प्राणाधार !

रघुवर—राज्याधिकार ! कठिन भार ! कठिन व्यवहार !

जानकी—नाथ ! तो क्या अब जानकीको अपनी शुद्धताका और प्रमाण देना होगा ?

रघुवर—निश्चय।

जानकी—निश्चय ? तो फिर प्राणपति ! जानकीके सतीत्वका जिन्दा प्रमाण लीजिये। बस अब और नहीं, अब और नहीं। माता वसुन्धरे !

यदी सीता पती प्राणा सती कुलवन्त नारी है।
यदी सीता वचन, मन, कर्मसे पतिकी पुजारी है॥
तो फट जाओ सियाको गोदमें अपनी छुपा लो तुम।
यदी सच्ची हूं तो जगसे मुझे माता ! उठालो तुम॥

(पृथ्वी फटती है और 'राम' 'राम' करती हुई जानकी उसमें समा जाती है)

रघुवर—जानकी ! जानकी ! क्या लोप हो गई ? आह ! जानकी, जानकी ! (मूर्च्छा)

दर्शकगण—हैं ! क्या जानकी लोप हो गई ?

राम—जानकी लोप हो गई ? गुरुदेव ! गुरुदेव ! इस दृश्य काव्यका तात्पर्य ?

वशिष्ठ—सीता पातालमें चली गयी।

राम—लक्ष्मी, सती और उमा-भवानीकेसे चरित्रवाली सीता पातालमें चली गयी ?

वशिष्ठ—हां।

राम—आह कैसा विकट दृश्य ! त्राहि, त्राहि।

भरत—(सम्हालकर) भाई ! भाई ! रक्षा कीजिये, गुरुदेव ! रक्षा कीजिये। मुनि वाल्मीकिके इस काव्यका अर्थ क्या है, शीघ्र बताईये।

वाल्मीकि—(लव-कुशके साथ प्रवेशकर) वह मैं तुम्हें बताऊंगा।

भरत—नहीं नहीं यह काव्य नहीं मिथ्या वानी है।

वाल्मीकि—नहीं ! नहीं ! यह वाल्मीकिकी भविष्य-वानी है। मैं तुझे मूर्तिमान दिखाऊंगा।

राम—क्या मुनि वाल्मीकि आगये ? प्रणाम, मुनिवर ! प्रणाम।

वाल्मीकि—कल्याण हो। राम, यही वह दोनो ऋषिकुमार लव-कुश तुम्हारे पुत्र हैं।

राम—मेरे पुत्र ? (राम उन्हें प्यार करनेके लिये आगे बढ़ते हैं, लव-कुश डरकर पीछे हटते हैं)

वाल्मीकि—लव-कुश ! यही वह तुम्हारे पिता भारत सम्राट रामचन्द्र हैं। इनके चरणोंकी रज अपने मस्तकपर लगाओ।

राम—आओ मेरे बच्चो ! आओ, मेरी छातीसे लग जाओ।

(लव-कुशका और पीछे हटना)

बाल्मीकि—लव-कुश ! अपने पिताके श्रीरचरणोंमें प्रणाम करो। पीछे क्यों हट रहे हो ?

लव—प्रणाम करूं ? और इस पिताको प्रणाम करूं ?

जिसने तजकर सति नारीको मतिहीन प्रजासे प्यार किया।
जिसने सीता सी पत्नी, मेरी माताका, तिरस्कार किया॥
प्रणाम करूं उसको जिसने पत्नीका हिरदय तोड़ा है।
जीवनमें जितना दूर रहूं उस पितासे उतना थोड़ा है॥

राम—आह ! कैसी स्वर्गीय ध्वनि ! अमृतके समान मीठी ध्वनि ! यद्यपि,—

ऐरावत गजके मस्तकका इस मुकुटमें मण्डित मुक्ता है।
तो भी यह सर इस मुकुट सहित अब इन चरणों पर झुकता है॥
इस प्रेम शुन्य नीरस हिरदयको करुणा जलसे पूर करो।
और क्षमा औषधि देकर बेटा ! जीवन तापको दूर करो॥

(बांहें फैलाकर गलेसे लगाना) बेटा, बेटा, क्या लव जैसा प्रतापी न्यायशाली बेटा अपने अपराधी धूर्त अन्यायी पिताको क्षमा न करेगा ?

लव—क्षमा और पिताको ?

राम—हां हां पिताको।

लव—पिताजी ! पिताजी ! आप मर्य्यादा पुरुषोत्तम हैं। पुत्रसे क्षमा मांगकर मर्य्यादाका उलंघन न कीजिये; पुत्रके जीवनको दूषित न बनाइये। यदि आप अपनी कृतियोंके लिये क्षमा चाहते हैं तो जगत पिता भगवानसे क्षमा मांगिये अथवा उस सती साध्वी क्षमामई अपनी पत्नीसे क्षमा मांगिये।

राम—आह सीता ! सीता ! मुनिवर, कहां है सीता ? लाईये,मेरी सीताको शीघ्र यहां लाईये ताकि राम आज इस भरे दरबारमें उस निरपराधिनी सीतासे क्षमा मांगकर अपने ललाटमें पुती हुई कलंक कालिमाको दूर करे ।

लक्ष्मण—पूज्य भ्राताजीके चरणोंमें प्रणाम ।

राम—लक्ष्मण लक्ष्मण, मेरी सीता कहां है ?

सीता—(प्रवेशकर) प्राणपति ! नमस्कार ।

राम—कौन मेरी सीता ? मेरी साध्वी सीता ? मेरी जीवनधात्री ? क्षमा, क्षमा ।

सीता—प्रभो ! क्षमा और अपनी चरण धूलसे ? यह भी कहीं हो सकता है ? उठिये,पतिदेव ! उठिये और सीताके [illegible] धर्मकी रक्षा कीजिये ।

राम—सीता ! सीता ! तुम स्वर्गकी [illegible] रामने प्रजाके निर्मूल लोकापवादको सुनकर तुम जैसी पतिव्रता, निष्कलंका पतिप्राणा स्त्रीको घरसे निकाल दिया । किन्तु जो होना था वह हो चुका । आज उसी निर्दोष सीताको इस भरे दरबारमें कौशल-राज्यके मुख्य प्रजावर्ग और सहस्रों प्रवासी तथा राष्ट्रवासी समुदायके सामने ग्रहण करनेके लिये राम अपनी दोनों भुजायें फैलाकर खड़ा है । क्या सीता, रामप्रिये सीता, अपने स्पर्शसे इन भुजाओंको पवित्र न करेगी ?

सभासद्—पवित्र करेगी और अवश्य करेगी ।